

ॐ

का त्रैतवाद''

द्वारा प्रस्तुत

चतुर्थ पुष्प

१५

ही की स्तुति

रामेश्वर व्याल

एम. ए. बी. एम-सी. (इन्जीनियर)
सिद्धान्त शास्त्री (पीठ-कार्यवाह)



द्वासुपर्णा सयुजा सखाया समानं
वृक्षं परिषस्वजातः । तयोरन्यः
पिप्पलं स्वादति अनश्नन् अन्यो
अभिचाकशीति ।

[ऋग्वेद-१।१६४।१०]

पूर्व प्रकाशित प्रसून—

१. त्रैतवाद की पक्ष स्थापना
२. त्रैतवाद में ब्रह्म महायज्ञ
३. त्रैतवाद में देवयज्ञ

आगामी आयोजन—

४. निराकार स्तुति में गेय बृहत् भजन संग्रह
५. त्रैतवाद में पितृ यज्ञ
६. त्रैतवाद में निहित सामाजिक एवं
राजनैतिक तन्त्र

भोपाल निवासी श्री गोपालदास भारती के ख्याति प्राप्त आर्य-परिवार
के आर्थिक सहयोग से पुस्तिका मात्र एक रुपये में उपलब्ध है ।

प्रथमवार
१०००

]

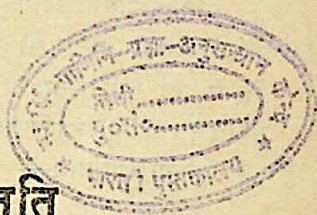
प्रकाशन तिथि

मार्गश्रैष्ठ्य, सितम्बर १९०२

[

रियायती मूल्य
एक रुपया

ॐ



निराकार स्तुति

(१)

हिन्दी कविता के सूर्यवत कवि-कुल-प्रवर संत सूरदास ने निर्गुणो-पासना की हंसी उड़ाते हुये एक सवैया गाया है :—

निर्गुण कौन देश को वासी ?

मधुकर ! हंसि-समुझाय सौहं दै, वृद्धति सांच, न हांसी ॥

को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारि, को दासी ?

कैसे वरन, भेस है कैसे, केहि रस में अभिलासी ॥

पावैगो पुनि कियो आपनो, जो रे ! कहैगो गांसी ।

मुनत मौन ह्वै रह्यो ठग्यो सो, सूर सबै मति नासी ॥

यह निर्विकार निराकार जिसकी उपासना का, हे ऊधौ तुम संदेशा-कृष्ण की ओर से हम गोपियों के लिये लाये हो, वह किस देश का वासी है उसका पिता, माता, उसकी नारी और दास कौन है ? उसका वण (रंग) और भेष कैसा है । उसको किस रस की अभिलाशा है । यदि कर्म का फल मिलना ही है तो उसकी प्रार्थना की क्या आवश्यकता है । ऊधौ को निरुत्तर खड़ा देख यह बात समझ में आई कि यह संदेश वाहक तो ठग सा खड़ा है । नो इसकी सब मति भ्रष्ट हो गई है ।

निर्गुणोपासकों का यह बड़ा कटु खंडन मंडन है। साधारण बुद्धि के पाण्डित्य-विहीन अन्धभक्तों को यह बात बुद्धि से परे है कि रूप रस गन्ध र विहीन तथा माता-पिता-स्त्री-सेवकों से रहित भी कोई महान सत्ता हो सकती है। परन्तु इसका उत्तर सृष्टि-निर्माण के साथ प्रगटित वेद-वाणी में तभी दे दिया गया था :—

१. न तस्य प्रतिमास्ति यस्य नाम महद्यशः।
जो महान यज्ञशाली है उसकी प्रतिकृति हो ही नहीं सकती।

२. सपर्यागाच्छुक्रमकायमात्रणमस्नाविर शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः। स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छा-
श्वतीभ्यः समाभ्यः।
[यजुर्वेद अध्याय ४० मंत्र ८]

वह प्रभु चारो ओर व्याप्त, पूर्णतया चेतन, सर्वशक्ति मान, शुद्ध, पूर्ण, सबका शासक एवं अनन्त ज्ञानवान है। यह तो हुई उसकी सगुण व्याख्या।

वह अकाय जन्म-मरण रहित, फुन्सी फोड़े एवं नस नाड़ियों से रहित भी है। यह हुई उसकी गुण-रहित अर्थात् जो गुण उसमें नहीं हैं—उनका वर्णन करते हुये उसकी स्तुति। इसी को निर्गुणोपासना कहा है।

उसका कार्य यह है कि वह ठीक ठीक कर्म-फल-विधान की व्यवस्था जीवों के लिये करता है। इस पूजा पद्धति में ईश्वर से सीधा साक्षात्कार होता है; जो हर प्राणी नित्य प्रातः सायं और यावज्जीवन प्रति क्षण करता रहता है। उसके लिये न मन्दिर की आवश्यकता है, न प्रतीक की, और न ही किसी विचोलिया की।

कहते तो यों हैं कि समय के साथ विकास हो रहा है। भौतिक साधनों का भी और बौद्धिक उपलब्धियों का। परन्तु बौद्धिक विकास

मामले में तो बात उलटी हो रही है। जहाँ नैसर्गिक वातावरण में नदी-तड़ाव के किनारे प्रभु-स्मरण की साक्षात् पद्धति थी, वहाँ काल-क्षेम में मनुष्य ने अपने और प्रभु के बीच में अनेकों विचौलियों (Middle men) को ला पिरोया है—जो कि बौद्धिक ह्रास और दिवालियेपन ही का द्योतक है। इस ह्रास की क्रमिक—वढोतरी की भी कहानी है। और वह गीता के निम्न श्लोक से प्रारम्भ होती है :—

१. सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकम् शरणमाव्रज ।

अहमेव त्वां सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।

[सब धर्मों को छोड़ कर मेरी शरण में आ जाओ। मैं ही तुमको सब पापों से छुड़ा दूंगा। चिन्ता न करो।]

महाभारत युद्ध का समय अब से ५००० वर्ष पूर्व का है। परन्तु मूल गीता तो ७० श्लोकों की थी। ६३० शेष श्लोक तो बाद में जोड़े गये हैं। महाभारत के समय में बहुत से धर्म थे ही नहीं जिनकी प्रतियोगिता में इस श्लोक में कृष्ण-पन्थ की प्रशंसा की गई है। परन्तु यह तब की कथा है जब अवतारों की बात मान ली गयी थी और लोग कृष्ण को भगवान का अवतार सिद्ध करने में लगे हुये थे। ऐसे अवतारों के मोक्षदायक होने की घोषणा अत्यावश्यक थी। वैदिक मर्यादा में तो ईश्वर अर्थों और कर्म-फलों का नियोजक था। परन्तु विचौलियों की मर्यादा में पापों का क्षय विचौलियों की कृपा से सम्भव था। कुछ भी हो यह महात्मा बुद्ध के काल से तो पहिले की बात है। अर्थात् अब से २५०० वर्ष से पूर्व। अवतारवाद हिन्दुओं में घर कर गया था। इनकी संख्या २३ तक पहुँच गई थी। बुद्ध को कलान्तर में मिलाकर २४ कर दी गई। प्रत्येक हिन्दू-मनीषी, विचारक और कवि के लिये यह एक मूल भूत धारणा बन चुकी थी और हिन्दू निष्क्रिय होकर हर विपत्ति में अवतार के प्रगट होने की धारणा और विश्वास लिये हाथ पर हाथ धरे करुणा-निस्सहाय सा बैठा रहता था !

तुलसीदास जी एक स्थल पर बाल काण्ड में राम-कथा प्रारम्भ करने से पहिले लिखते हैं :—

एक अनीह अरूप अनामा, अज सच्चिदानंद पर धामा ।
व्यापक विश्व रूप भगवाना, तेहि धरि देह चरित कृत नाना ॥

ऊपर की लाईन में “अज” कहा पर नीचे की लाईन में देह धरने (अवतरित) होने की बात कही है। कैसा परस्पर विरोध है।

२. आज से २५०० वर्ष पूर्व गौतम बुद्ध ने अवतारों और उनके प्रिय हिंसक कर्म-काण्डों के विपरीत विद्रोह किया और जब लोग नहीं मानते तो ईश्वर की सत्ता पर ही सन्देह प्रगट कर दिया। परन्तु जब महात्मा बुद्ध दिवंगत हो गये तो फिर प्रश्न हुआ कि दुखी-जन किसकी शरण में जावे ? तब उनके अनुयायियों ने श्लोक रचा :—

बुद्ध मे शरणम् गच्छामि ।

धम्म मे शरणम् गच्छामि ।

संघ मे शरणम् गच्छामि ।

बुद्ध धर्म में प्रवेश करते समय यह ३ प्रण लेने की व्यवस्था की गई। इनमें धम्म और संघ तो बाद में हैं। पहिले बुद्ध की शरण में जाना होता है। परन्तु जो है नहीं—दिवंगत हो गया—उसकी शरण में जाना कैसे होगा ? तब समाधान हेतु बुद्ध की मूर्तियों को प्रचुर-तम मात्रा में निर्माण किया गया कि इनकी शरण में जाओ। बुद्ध-परस्ती—बुत-परस्ती शुरू हो गई। बौद्धों ने भी जैनों का पथ अपनाया। तीर्थंकरों की मूर्तियों का निर्माण भी नास्तिक-धर्म-प्रस्तोता द्वारा अपने शिष्यों को एक उपास्य देव देने की प्रक्रिया मात्र थी। मूर्ति-पूजा का आधार नास्तिक-दर्शन और उसकी मजबूत-रियायत ही थी।

३. इसकी होड़ा-होड़ी में हिन्दुओं ने भी मूर्तियाँ निर्मित करना प्रारम्भ किया। २४ तीर्थंकरों की नकल में २४ अवतारों की मूर्तियाँ बनीं। जैन सृष्टि-कर्त्ता नहीं मानते थे। शेष हिन्दू तो जगत के नियन्ता की बात करते थे। बौद्ध प्रवृत्ति ऐहिक माता-पिताओं को ही अपना जनक मानती थी। फलतः उनकी मृत्यु के उपरान्त भी बौद्धों के प्रमुख स्थल गया में पिण्ड दान और अन्यत्र श्राद्ध द्वारा उन्हें हवि पहुँचाने की प्रथा प्रारम्भ हुई। हिन्दुओं ने पिता के पिता महादेव और माता की माता, जगन्माता पार्वती और इस पितृत्व और मातृत्व के प्रतीक महान-लिंग और महान-योनि संयोग की पूजा की और इन्हीं के चित्रों को स्थापत्य में ढालकर शैव मन्दिरों की स्थापना की। सारा पृथ्वी-तल इनसे भर गया। मूर्ति पूजा का महान विरोधी मुहम्मद भी अपने जन्म स्थान मक्का में स्थित इस मन्दिर और उस में स्थित शिव लिंग (संगे-असबद) को नष्ट करने का साहस न कर सका, यह कह कर कि यह उसके देश की राष्ट्रीय विरासत है।

सम्भोग प्रक्रिया की पूजा करने वालों की एक जमात प्रागैतिहासिक काल से चली आई है। ऋग्वेद के निम्न मंत्र में प्रार्थना की गई है कि शिशनेदेवा (लिंग पूजक) हमारे यज्ञ में न आवें;—

[न यातव इन्द्र जूजुवुनों न वन्दनाः

शविष्ठवेधाभिः । सशर्धदर्यो

विष्णुस्य जन्तोर्भा शिशनेदेवा

अपि गु ऋतं नः । (ऋ० ५-३-३-५)]

इनके दर्शन का मूल अद्वैत ही है। सारे जीव ब्रह्म में से मायावृत्त हो निकले; उस के अंश हैं। अस्तु भौतिक रिश्ते से प्रगटित हम उस ब्रह्मा की संतान हैं। अस्तु हम उस महान पिता और उसकी शक्ति स्वरूपा स्त्री देवी पार्वती और उनकी संभोग-प्रक्रिया की पूजा द्वारा ईश्वर की स्तुति करें। स्वामी दयानन्द ने पहिले तो त्रैत दर्शन की स्थापना द्वारा यह सिद्ध किया

कि जीव और प्रकृति भी ईश्वर के समान अनादि और अनन्त हैं। ईश्वर दोनों में से किसी का उपादान कारण नहीं है। न ही ईश्वर से उसकी चेतन शक्ति प्रथक है और न उनके मानवी सम्भोग का उपमान मान्य है। इस स्थापत्य कला और उसमें निहित पूजा-पद्धति और उसका दार्शनिक श्रोत सभी अवैदिक और अनापेक्ष हैं।

कालान्तर में जब यज्ञ में बलि के प्रचलन के विरोध में बौद्ध समय में यज्ञों को कानूनन बन्द करवा दिया गया तो यह होते हुये अग्नि की लपटों और शिखरों को कलश का रूप देकर चतुर्भुजाकार यज्ञ-कुण्ड को ईंटों और पत्थरों के स्थापत्य के रूप में अमर करने हेतु वैष्णव मन्दिरों का इस देश में निर्माण हुआ।

दक्षिण-पथ में भी हर नगर में एक ओर शैव तो दूसरी ओर इस वैष्णव स्थापत्य कला के मन्दिर बने हुये हैं। वर्षों इनमें अत्यधिक वैमनस्यता रही। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने यज्ञ प्रक्रिया का पुनरुद्धार किया। सर्व प्रथम तो उन्होंने यज्ञों में बलि प्रक्रिया का बल-पूर्वक खंडन किया। एत-द्विषयक सब वेद-मन्त्रों का यौगिक अर्थ प्रणाली के आधार पर सच्चा अर्थ दर्शाया। यदि वे महा-पण्डित न होते और यौगिक अर्थ प्रणाली उन्हें ज्ञात न होती तो शायद चारवाक के चरण-चिन्हों पर चलकर वे भी यही उद्घोष करने लगते कि जिन वेदों में पशु-बलि का समर्थन भरा पड़ा है, वे वेद तो निश्चय ही किसी निश्चिन्त (राक्षस) की कृति हैं [तयो वेदस्य कर्तारः भांड धूर्त निशाचरः] पशु बलि से पिन्ड छुटाकर महर्षि ने आर्य जनों और जन-जन द्वारा एवं आर्य समाजों में नित्य और प्रातः-सायं यज्ञों का प्रचलन यत्न पूर्वक आरम्भ किया जो अभी तक अघावत चालू है। पौराणिक पंडित तो अज्ञारी मात्र जलाकर अथवा धूप-द्वीप-नैवेद्य प्रस्तुत करके सतुष्ट हो जाते थे और कहते थे कि कलियुग में यज्ञ करने का निषेध है। कोई कोई मौन यज्ञ ही करते थे कि वेद-मन्त्रों का उच्चारण कलि में नहीं करना चाहिये, कारण

वेद-वाणी न जाने किन पात्र-अपात्र (शूद्रादि) के कर्ण गोचर हो जावे। इसका खण्डन स्वामी दयानन्द ने यह कह कर किया कि स्वयं वेद यह आज्ञा देते हैं कि “यथेमा वाचं कल्याणीम् वदानीमि जनेभ्यः।” जन जन को वेद की कल्याणमयी वाणी सुनाई जावे। अस्तु इस युग में आर्य समाज के प्रस्तोता ने यज्ञ प्रक्रिया का उद्धार कर दिया। अब उसके स्थापत्य-कला मात्र के रूप में ईंट-पत्थर पर स्थापित और चित्रित एवं अंकित करने का न कोई कारण है, न आवश्यकता।

ईश्वर-साक्षात् की सीधी प्रक्रिया के प्रचार ने इन मन्दिरों को निरर्थक सिद्ध कर दिया। पूजा की इस मंहगी प्रणाली जिसमें ग्राम-ग्राम नगर-नगर में करोड़ों रुपया व्यय करके इन पूजा-स्थलों का निर्माण होता आ रहा है, को अब समाप्त कर देना चाहिये। यह राष्ट्रीय अपव्यय है। जब उजबेकिस्तान देश रूस के साम्यवादी राष्ट्रमण्डल में सम्मिलित हो गया तो समरकंद और बुखारा की विशाल मस्जिदों में फैक्टरी खोल दी गई और उन पर बाहर पत्थर लगाकर वह वाक्यांश लिख दिया गया :—

“अब यहां मानव के सुख के लिये वस्तुओं का उत्पादन होता है। यहां उषाकाल में खड़े होकर अब कोई नागरिकों की नींद हराम नहीं करेगा।” तात्पर्य अज्ञात से है। समय रहते हमें चेतना चाहिये।

संसृति मन्दिरों मात्र से संतुष्ट नहीं रही। उनमें साज-सज्जा और प्रतीकात्मक उपास्य-देव भी ला बिठाला गया।

जैन-बौद्ध प्रभाव से हिन्दुओं ने अवतार और मूर्ति यह दो विचित्र-लिये अपने और अपने प्रभु के बीच में ला स्थापित किया। प्रारम्भ में तो कहा कि यह प्रभु तक पहुँचने के साधन मात्र हैं। पर बाद में साधन को ही साध्य समझ कर उसी में मग्न हो गये। प्रभु की स्तुति और प्रार्थना छोड़कर इन्हीं के साज-सजाव श्रृंगार और अर्चन में फँस कर रह गये।

[८]

४. कोई ५०० वर्ष बाद अर्थात् अब से १९७२ वर्ष पूर्व एशिया माइनर के प्रान्त पैलेस्टाइन में एक आन्दोलन उठा। इसमें श्रीमद्भागवद के आधार पर कृष्ण के अपभ्रंश कृष्टो की कल्पना करके उसी प्रकार के जीवन चरित्रयुक्त जीवन झांकी उभारी गई। चार भक्त संत जोजक, मैथ्यू, ल्यूकश एवं थोमस ने उस जीवन पर विपद रूप से लिखा। उस लेखन संग्रह की सज्ञा वाइबिल हुई और उसमें प्रभु-प्राप्ति का मार्ग बताया गया प्रभु के विशेष-पुत्र इन कृष्टो महाशय पर ईमान लाना। कहा गया कि यह कृष्टो युग-युगान्तरों तक के तुम्हारे सब पापों को क्षमा करवा कर उनका भार स्वयं उठा लेना और बदले में तुम्हे पुन्य की उतनी ही भारी गठरी दे देगा। उसी की शरण में आओ। आज सारी दुनियां में उन्हीं के मत वालों की संख्या सबसे अधिक है। पूर्व पैरा में वर्णित बौद्धों से भी अधिक है। इस सम्प्रदाय में विश्वास रखने वाले कृष्टो को स्वयं तथा भगवान के बीच में विचौलिया मानते हैं। भगवान तो दूर छूट गये, नित्य सायं प्रातः उसी व्यक्ति विशेष की अब पूजा होती है। अतुल धनराशि व्यय करके उसकी क्रास-मय प्रतिमायें स्थापित की गई हैं। प्रभु प्यारे को कौन पूछता है? कृष्टो की सर्वभावेन पूजा हो रही है क्योंकि वह प्रभु का विशेष पुत्र था। साकार वाद का ही यह एक रूप है जो मनुष्य को क्रमशः नास्तिकत्व की ओर ले जाता है। यह बात अब से १९७२ वर्ष पूर्व की है और नास्तिकत्व के क्रमशः विकास की ओर संकेत करती है।

५. अब से कोई १३७७ वर्ष पूर्व एक और महात्मा हुये। अपने चारों ओर मूर्तियों, बहुदेवताओं और परमात्मा के विशेष-पुत्र की पूजा देख वह क्षुब्ध हुये और उन्होंने इस शिर्क के खिलाफ जिहाद बोलकर तौहीद (एकी-श्वरवाद) का नारा बुलन्द किया। उन्होंने उद्घोष किया—

(१) ईसा मसीह ने तो कहा था कि अल्लाह हमारा प्रभु है, और किसी को अपने की-उसके सिवा नहीं बताना चाहिये। पर तुमने यह

क्या किया। उसे ही प्रभु का विशेष पुत्र बता डाला। [कुरान अध्याय-६ आयत-७३]

(२) मेरी एक अच्छी स्त्री थी। उसने और इशु दोनों ने भोजन खाया, तो फिर पिता, पुत्र और पवित्रात्मा का सिद्धांत कैसा ?

[कुरान-६, आयत-७५]

(३) ईसा ने कहा जब तक मैं जिन्दा था, मैंने तौहीद फैलाई। मुझे जब आपने उठा लिया शिरकत फैली। [कुरान अध्याय-१३, आयत ११८]

(४) ईश्वर को योग्य नहीं कि किसी को बेटा बनाये।

[सूरत मरियम आयत ६२]

(५) सूरत तौबा आयत-३०-ईसाई मसीह को खुदा का बेटा बताते हैं। यहूदी उजैर को खुदा का बेटा कहते हैं। यह उनके मुंह की बातें मात्र हैं। पहले भी इसी तरह की बातें लोग कहते थे। ईश्वर उनका नाश करे। यह कहाँ भटकते फिरते हैं ?

स्वयं हजरत मोहम्मद ने मरते समय आज्ञा दी थी कि जिस खजूर के वृक्ष के नीचे वे मर रहे थे, उसे तुरन्त काट दिया जावे, ताकि उनकी मृत्यु के बाद लोग उस वृक्ष की ही पूजा न करने लगे।

परन्तु उनके मरने के बाद उनके शिष्यों ने क्या किया ? खलीफाओं द्वारा सम्पादित कुरान ने कहा कि "इस्लाम का मूल मन्त्र कलमा है जिसका अर्थ है कि ईश्वर दयालु है। और मुहम्मद ही उसका सन्देशवाहक (पैगम्बर) है। जो इन दोनों पर ईमान लावेगा वही मुसलमान (ईमान वाला) है।"

"जो पैगम्बर का आज्ञाकारी है वही खुदा का बन्दा है।" [कुरान भाग-४ आयत-८१]। बाद में हदीसों में भाव-विह्वल कवियों ने तो यहां तक गाया कि :—

“अल्लाह के पल्ले में बहदत के सिवा क्या है ?
लेना है सो ले ले-गे हम अपने मुहम्मद से !”

कुछेक मुस्लिम मनीषियों ने ह. मुहम्मद की ही दलील अपना कर कहा कि यदि मूसा और ईसा का इलहाम मन्सूख करवा के हजरत नये इलहाम लाने वाले थे, तो अब उनके सैकड़ों वर्षों बाद किसी नये इलहाम की स्वतः आवश्यकता हो गई है। बहाबुल्ला खां बहाव और अभी अभी मिर्जा गुलाम मुहम्मद कादियानी ने कहा कि वे भी पैगम्बर हैं। परन्तु मुसलमानों ने इसे नहीं स्वीकारा। बहावियों और कादियानियों को भी वे काफिर कहते हैं। सम्प्रदाय चलाने वाले अपने आका के बाद किसी और आका, अवतार, पैगम्बर या गुरु का होना नहीं मानते। उनके चरित्र नायक सारी परम्परा के तारतम्य में अन्तिम करार दिये जाते हैं। तभी तो उन्हीं की पूजा प्रचलित हो सकती है। ईश्वर-पूजा का नम्बर बाद में आता है। पहिले तो जन्म-जन्मान्तर इन मृत महापुरुषों की पूजा-भक्ति में बीत जाते हैं। तौहीद को उसके पुनर्जागृत करने वाले के शिष्यों ने ही दफना दिया।

६. भारत में प्रवेश के बाद एकीश्वरवादी इस्लाम और अवतारवादी हिन्दुओं के परस्पर सम्पर्क और ऊहा-पोह ने एक नवीन पद्धति का जन्म दिया। पैगम्बर के स्थान पर एक गुरु की कल्पना हुई। ईश्वर को तो निराकार मानते रहे। उनके अवतार और मूर्ति सबका खण्डन यथावत रहा पर पूजा के पात्र के रूप में गुरु का स्थान उठ खड़ा हुआ। कबीर ने गाया “निरजीव आगे सरजीव थापै, लोचन कछुव न सूझै।” परन्तु सरजीव की वेदना में मुजस्सिम गुरु के शरीर की पूजा प्रचलित हो गई। गुरु ने कहा कि प्रभु के समझने के लिए मेरा सम्पर्क आवश्यक है। तदन्तर कहा मेरी सेवा सुश्रुषा करो ताकि मैं प्रसन्न-मना तुम्हे प्रभु के मार्ग पर ले चलूं। फिर कहा मेरी पूजा करो। मैं ही तो प्रभू हूं :—

१. ‘गुरु-ब्रम्हा गुरु-विष्णु गुरु परम महेश्वरा। तस्म.त गुरु-पदम बन्दे साक्षात्तहम्’। तब शिष्य ने भी गाया:—

२. पुनि सुमिरौं गुरु वर चरन वांक्षित—फल दातार ।
अति दुस्तर भव सिंधुतें, जे पहुँचावहि पार ॥
३. परम गुरु राम मिलावन हार,
अति उदार मज्जुल मज्जल—मय, अभिमत—फल—दातार ।
४. बंदहुं गुरु पद पदुम परागा, सुखि सुवास सरस अनुरागा ।
श्री गुरु पद नख मनि गत जोती, सुमिरत दिव्य दृष्टि हियं होती ।
गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन, नयन अमिय दृग दोष विभंजन ।
[रामायण की प्रस्तावना में तुलसीदास रा० च० भा० दोहा
१ व २ के बीच बालकाण्ड]
५. गुरु के चरन की रज लेके, दोऊ नैनन के बीच अंजन दिया ।
तिमिर भेटि उंजियार हुआ, निरंकार पिया को देख लिया ॥
कोटि सूरज तहां छिपे घने, तीन लोक धनी धन पाय-पिया ।
सत गुरु ने जो करी किरपा, मरि के “यारी” जुग-जुग जिया ॥

गुरु का साहस बढ़ा और उन्होंने भक्त के सामने विकल्पा रक्खा कि अब मुझमें और प्रभु में से एक को चुन लो—उज्जैन स्थित भर्तृहरी की गुफा में दो मूर्तियें स्थापित हैं। एक तो विष्णु भगवान की है और दूसरी उनके गुरु गोरखनाथ की है। ऊपर यह दोहा लिखा है :—

गुरु-गोविन्द दोनों खड़े काके लागू पांय ?
धन्य भये गुरु आपने जिन गुरु दियो बताय ॥

गुरु और प्रभु दोनों खड़े हों तो मैं गुरु को चुन लूंगा क्योंकि उन्होंने प्रभु—मिलन का गुरु (रास्ता) जो बताया है। कबीर, नानक और दशम गुरु तक उनकी परम्परा तथा दादू, रैदास, बल्लभाचार्य (पुष्टि मार्ग के गुरु), चैतन्य महाप्रभु (पूर्वान्वल के वैष्णव गुरु), अष्ट छाप के कवि गण, रामानन्द और आधुनिक समय में ब्रह्माकुमारी संगठन के दादा गुरु लेखराज, सतसाईं बाबा, रामकृष्ण—परमहंस इसी पंगत में हैं। दिव्य-जीवन परिषद के

प्रस्तोता स्वामी शिवानन्द जी की पूजा भी प्रारम्भ हो गई है। उनकी आरती बन गई है। गायत्री महामंत्र के प्रचारक और उपदेष्टा पं० श्रीराम शर्मा ने भी अपने फोटो बनवा कर उनकी पूजा प्रारम्भ करवा दी है। रमन महर्षि, अरविन्द सभी के शिष्यों ने उनकी पूजा प्रचलित करा दी। एक न एक दिन गुरु तो दिवंगत हो ही जाते हैं। भक्तों ने सोचा अब किसकी पूजा करें? तब इन सम्प्रदायों के प्रमुखों ने ३ विकल्प दूढ़े। प्रथम तो उनकी मूर्ति गढ़ी। हुगली के तट पर रामकृष्ण मिशन के विशाल मन्दिर बने हैं। वहां पर पुजारी रामकृष्ण (परमहंस) की आदमकद मूर्ति की आरती उतारी जाती है। विवेकानन्द समेत उनके सब शिष्यों की मूर्तियाँ भी बना दी गई हैं। उनकी भी आरती उतारी जाती है। द्वितीय विकल्प यह रक्खा कि उनकी जो कृति या पुस्तक है उसकी पूजा कराई जावे। गुरु के द्वारों अर्थात् गुरुद्वारों में श्री ग्रन्थ साहिब को रेशम के वस्त्रों से सजा कर रखते हैं, उस पर चंदर ढुलाते हैं और उसकी आरती उतारते हैं। भक्त जन उसी के सम्मुख साष्टांग दण्डवत् कर अपना मत्था टेक कर पूजा-कार्य की इतिश्री समझते हैं। गुरु प्राणनाथ की पुस्तक की भी पूजा होती है। तीसरा विकल्प यह था कि गढ़ी बना दी गई और जीवित उत्तराधिकारी चुनने की प्रथा जारी रही। हीन-यान बौद्धों में बुद्ध का उत्तराधिकारी बुद्ध लामा बनकर सदा विराजमान रहता है। एक लामा की मृत्यु के क्षण पर ही जो बालक अन्यत्र कहीं जन्मता है उसी को पुनः जन्म बुद्ध मानकर जन्मते ही गढ़ी पर बिठा देते हैं। शंकर स्वामी की पीठों पर भी दूसरा व्यक्ति आसन्न हो अपनी पूजा प्रचलित करा देता है। इधर निकट आगरा नगर में राधा स्वामी सम्प्रदाय ने भी यही व्यवस्था रक्खी है कि शब्द ब्रह्म की विशेष लहरों से गुरु जन्म लेता है। और राधास्वामी अनादि शब्द है। प्रभु का प्राकृतिक नाम है। वह अनादि है, अनन्त है। अतः एक गुरु के बाद दूसरा आवश्यक है जिसके शरीर पर ध्यान केन्द्रित करके योग क्रिया की जा सके। गुरु के द्वारा थूके हुये प्रसाद में उसकी विशेष कान्ति आ जाती है, अतः प्रसाद का हलवा उनके थूक से मिश्रित करके ही बांटा जाता है। उनके पाद-प्राक्षालन का पानी

चरणामृत बना के पीने की भी व्यवस्था है। अब तो दो विभिन्न व्यक्तियों द्वारा गुरु होने के दावे के कारण सम्भवतः गद्दी खाली है और मुकुटमा निर्णयार्थ इलाहाबाद हाईकोर्ट में चल रहा है। तो सस्कृति के उत्थान (?) की विधि यहां तक आ पहुंची है। प्रभु वेचारा तो बहुत दूर छूट गया है।

इन पन्थों की इस प्रक्रिया को कलियुग (अर्थात् अपने समकालीन युग) की मुख्य वस्तु देख तुलसीदास ने उत्तर काण्ड में कागभुमुन्डि के मुख से व्यंग्य रूप में अपने एक पूर्व जन्म की कथा का वर्णन करवाया है जब कि वह कलियुग में अवधपुरी में उत्पन्न हुआ था। कलियुग में मनुष्य-कृत सम्प्रदायों के बाहुल्य पर वह लिखते हैं :—

कलि-मल ग्रसे धर्म सब लुप्त भये सदग्रन्थ ।
 दंभिन्ह निजमति कल्पि कर प्रगट किये बहु पंथ ॥ दोहा ॥ [६७ क]
 वरन धर्म नहि आश्रम चारी । श्रुति विरोध रत सब नर नारी ॥
 द्विज श्रुति बंचक भूप प्रजासन । कोउ नहि मान निगम अनुसासन ॥
 मारग सोइ जा कहुं होइ भावा । पंडित सोइ सो गाल बजावा ॥
 मिथ्यारम्भ दम्भरत जोई । ताकहुं संत कहहि सब कोइ ॥
 सोइ सयान जो परधनहारी । जो कर दंभ सो बड़ आचारी ॥
 जो कह झूठ मसखरी जाना । कलिजुग सोइ गुनवत बखाना ॥
 निराचार जो श्रुतिपथ त्यागी । कलिजुग सोइ ग्यानी सो विरागी ॥
 जाके नख अह जटा विसाला । सोई तापस प्रसिद्ध कलिकाला ॥
 ६७ क । १ से ८ ।

असुभ वेपभूषन धरे भच्छाभच्छ जो खाहि ।
 तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर पूज्य ते कलिजुग माहि ॥ ६८ क ॥

हमारे जीवन काल ही में तुलसीदास की यह भविष्यवाणी ठीक हुई दीखती है। इस शताब्दी के ऐसे कुछ प्रयत्नों को हम संक्षेप में कह डालने का लोभ संवरण नहीं कर सकते।

पुरुषों में कृष्ण बनने की लालसा :—

[अ] अब से लगभग १२ वर्ष पूर्व प्रतापगढ़ जिले के ३५ वर्षीय रोम कृपालु त्रिपाठी वृन्दावन में वृक्ष पर चढ़कर वंसरी बजाते, उनकी शिष्यायें तालाब में नंगी नहाती थीं, वे कपड़े ले जाते, चेलियां नंगी निकल कर काड़े मांगतीं। स्त्रियों के साथ जल विहार, वन विहार सब कुछ वही करते जो कृष्णजी के विषय में भागवत एवं ब्रह्म वैधर्म में लिखा है। उन्होंने स्त्रियों के साथ अनेकों चित्र खिचवाये थे।

[ब] रामसिंह रावत ने हंस नाम से अपने को अखिल ब्रह्मांडपाते कृष्ण, अपनी पत्नी को जग जननी—राधा घोषित किया। मुकुट बांध, वंसरी लेकर वह रासलीला करता था। उसके तीनों बड़े पुत्र अवतार और छोटे पुत्र प्रेमपाल सिंह रावत बाल योगेश्वर बनकर पाश्चात्य वेशभूषा के उपासक मांसादि को पाप नहीं मानते।

[स] निरंकारी बाबा अवतार सिंह मुकुट पहिन कर कृष्ण का अवतार बन गये। अब उनके पुत्र गुरुबचनसिंह भी अवतार हो गये हैं।

[द] महाराष्ट्र के मुसलमान फकीर साईबाबा ईश्वर के अवतार कर के पूजे जाते हैं।

[य] अब आंध्र में सत्य नारायण राजू नये साई बाबा हो गये हैं। ये भी ईश्वर के अवतार कहे जाते हैं।

[र] आनन्द मार्ग के प्रवर्तक प्रभात रंजन सरकार (जो आजकल जेल में हैं, जिन पर आठ हत्यायें करने कराने का मुकदमा चल रहा है) केवल मात्र अपने को ही कृष्ण का सच्चा अवतार मानते हैं।

[ल] आचार्य रजनीश अपने को साक्षात् ब्रह्म मानने वाले नंगे स्त्री पुरुषों का आदर्श शिविर लगाते हैं और संभोग में योग की प्रेरणा देते हैं।

[व] दादा लेखराज की ओम मण्डली के ब्रह्मकुमारी और ब्रह्माकुमार मिल कर दिव्य सन्देश दे रहे हैं; और सच्ची मुक्ति दिलाने का दावा कर रहे हैं।

[१५]

[श] बाधवाराम गार्ड स्त्रियों के वेश में रहने लगे अपने को राधा का अवतार घोषित कर दिया ।

[ह] आगा खाँ और मिर्जा गुलाम अहमद कादियानी मुकुट बाँध कर हाथ में वंसरी लेकर अपने को साक्षात् कृष्ण का अवतार कहते थे ।

[स] अब 'इन्टर नेशनल सोसायटी फार कृष्ण कौन्शेसनेस' नाम की संस्था स्थापित हुई है जिसका यह दावा है कि गत ५ हजार वर्षों से कृष्ण भगवान लगातार अवतार लेते आ रहे हैं, जिसमें कृष्ण, ब्रह्मा, नारद, व्यास चार नाम तो पुराने हैं । शेष ३६ ऐसे हैं जिनका कोई पता हम नहीं बता सकते । ये सब कृष्ण के पीढ़ी दर पीढ़ी अवतार हैं । इस संस्था की शाखायें विदेशों में खोली जा रही हैं ।

[क्ष] अवतारवाद की धारणा यह है कि सर्वशक्तिमान ईश्वर ने २३ अवतार तो सतयुग त्रेता द्वापर में ले लिए । अब कलयुग में एक कल्कि अवतार होगा । कुछ वर्ष पूर्व बुलन्द शहर जिले की एक स्त्री ने अपने को कल्कि अवतार बताया । वह बुलन्द महाराजा के नाम से प्रसिद्ध हो गई । लोगों की भीड़ आने लगी । भविष्य पुराण में ईसा मोहम्मद तथा औरंगजेब आदि बादशाहों को भी अवतार बताया है । अब श्री वेदप्रकाश एम० ए० (संस्कृत-वेद) शोध छात्र प्रयाग विश्व विद्यालय ने अपनी पुस्तक "कल्कि अवतार और मोहम्मद साहिव" में हजरत मोहम्मद साहिव को चौबीसवाँ अवतार सिद्ध किया है ।

७. गुरु सम्प्रदायों के साथ अद्वैत सिद्धान्त चोली दामन की तरह जुड़ा हुआ है । "तुम स्वयं ब्रह्म हो । अपनी शक्ति तुम भूले हुये हो । उसका भान हो जाना ही मुक्ति है । वह भान गुरु की कृपा से ही होगा । धर्म कर्म स्वाध्याय आदि अन्य सब बातें व्यर्थ हैं ।" यदि इनकी चल जाये तो सारा समाज निष्क्रिय हो जावे । दरिया साहब हिन्दी के एक सुप्रसिद्ध कवि हुये हैं । मुसलमान होते हुये भी वह गुरु-पन्थी हो गये थे । अद्वैत तो सूफियों का भी दर्शन रहा ही है । बस उन्होंने लिख मारा :—

सब जग सोता सुध नहि पावै, बोलै सो सोता बरड़ावै ।
 संसय मोह भरम की रैन, अन्ध धुन्ध होय सोते ऐन ॥
 जप-तप संजम औ आचार, यह सब सपने के व्योहार ।
 तीर्थ दान जग प्रतिमा-सेवा, यह सब सुपना लेवा-देवा ॥
 कहना सुनना हार और जीत, पछा पछी सुपनो विपरीत ।
 चार बरन औ आश्रम चार, सुपना अन्तर सब व्योहार ॥
 षट-दर्शन आदी भेद-भाव, सुपना अन्तर सब दरसाव ।
 राजा राना तप बलबंता, सुपना माहीं सब बरतंता ॥
 पीर औलिया सबै सयाना, रब्बावमाहि बरतै विधिनाना ।
 काजी सैय्यद औ सुलताना, रब्बावमाहि सब करत पयाना ॥
 सांख्य, योग औ नौधा भकती, सुपना में इनकी इक विरती ।
 काया कसनी दया ओर धर्म, सुपने सुर्ग औ बन्धन कर्म ॥
 काम क्रोध हत्या पर-नास, सुपना माहीं नरक निवास ।
 आदि भवानी संकर-देवा, यह सब सपना लेवा देवा ॥
 ब्रह्मा विष्णू दस औतार, सुपना अन्तर सब व्योहार ।
 उम्बिज सेदज जेरज अण्डा, सुपनरूप बरतै ब्रह्मंडा ॥
 उपजै बरतै अरु बिनसावै, सुपने अन्तर सब दरसावै ।
 त्याग ग्रहन सुपना-व्योहार, जागा सो सब से न्यारा ॥
 जो कोई साध जागिया लावै, सो सनगुरु के सरनै आवै ।
 कृत-कृत विरला-जोग सभागी, गुरुमुख चेत सबद मुख-जागी ॥
 संसय मोह भरम निसि-नास, आत्म राम सहज परकास ।
 राम संभाल सहज धर ध्यान, पाछे सहज प्रकासै ज्ञान ।
 जन "बरियाव" सोई बड़भागी, जाकी सूरत ब्रह्म-संग लागी ॥

कैसी भयानक स्थिति है ।

८. अस्तु निर्गुण-सगुण को निराकार और साकार का पर्याय मान कर प्रभु-भक्ति का मार्ग दो धाराओं में प्रवाहित हो गया है । तुलसीदास ने

[१६ अ]

भी गुरु-वन्दना से ही अपनी पुस्तक प्रारम्भ की है और वहाँ गुरु की पूजा को साकार पूजा का अंग ही कहा है। यों हम जानते हैं कि गुरु और गुरु-पंथों की गुरु-पूजा शिक्षा के हेतु गुरु की अत्यन्त आवश्यकता है। मातृमान पितृमान आचार्यमान पुरुषो वेदः। माता पिता आचार्य ही ज्ञान कराते हैं। अपने देश में एक समय गुरुकुल एवं अन्तेवासिन प्रणाली में यह भी अपेक्षित था कि शिष्य गुरु की शारीरिक सेवा करे। संदीपनि के आश्रम में कृष्ण और सुदापा दोनों कुल गुरु की गायें भी चराते थे पर उन गायों का दूध उन्हें भी मिलता था। स्वयं स्वामी दयानन्द सरस्वती गुरुवर विरजानन्द की सेवा सर्वतो भावेन करते थे। पर वे Do-The-Boys Hall नहीं थे। न ही वहाँ गुरु की आरती उतारी जाती थी और न उस शारीरिक सेवा का कोई आध्यात्मिक फल था। न ही गुरु ईश्वर का प्रतिनिधि था। इस अर्थ में तो हर गुरु का एक उससे पहले गुरु था और आदि गुरु स्वयं परमेश्वर ही हैं।

सो पूर्वेषामपि गुरुः कालेनावच्छेदात् ॥ योग दर्शन ॥

और उसी आदि गुरु की शिक्षा वेद में संकलित है। वेद सब सत्य विधाओं की पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना, सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। ऐमा तो आर्य समाज का तीसरा नियम है। अस्तु गुरु को ही उपास्य देव बनाना तो फिर आत्मा और परमात्मा के बीच तीसरा उपास्य देव ला खड़ा करने की प्रक्रिया मात्र हैं। यह मनुष्यत्व का अपमान है कि एक मनुष्य दूसरे के सामने नत-मस्तक साष्टांग खड़ा है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने बारे में भी स्थिति स्पष्ट कर दी कि ब्रह्मा से लेकर जैमिनि पर्यन्त जो कुछ कहा गया है, वही मैं कह रहा हूँ। मैं तुम्हारे ही जैसा एक मनुष्य हूँ। उन्होंने कहा मेरे मरने के बाद मेरे फूल

[१६ व]

किसी खेत में बिखेर देना ताकि कहीं मेरे शिष्य मेरा मजदूर बनाकर न पूजने लगे और ऐसा ही किया गया। उनके जीवन चरित्र में कोई चमत्कार की घटना उनका महत्व बढ़ाने के लिये हमने नहीं जोड़ी और न कोई उनकी मूर्ति बनाई तथा न कवियों ने उनकी कोई स्तुति और आरती पद्य-मय करके प्रचलित की। हम मनुष्य-पूजा के विरोधी हैं।

महर्षि दयानन्द ने सब विचोलियों से हमारी रक्षा की और प्रभु के साथ सीधा सम्पर्क (Direct Contact) स्थापित कर दिया और कहा कि प्रातः सायं उसी की शरण में जाकर आताप-पश्चाताप, अनुनय-विनय और धन्यवाद ज्ञापन करो और दृढ़ व्रतों का धारण करो। इस प्रकार सच्चे ब्रह्म-यज्ञ और देव-यज्ञ की पुनर्स्थापना की [इनके मनन हेतु लेखक की ब्रह्म-यज्ञ और देव-यज्ञ पर प्रथक पुस्तकें पढ़ें।]

कतिपय सज्जन कहते हैं कि स्वामी जी ने इस प्रणाली के खण्डन हेतु कटु प्रहार किये हैं। पर बात ऐसी नहीं है। इस पुस्तक के प्रारम्भ में सन्त सूरदास का निगुणोपासकों के प्रति जो खण्डन है, वह किसी मृदुल भाषा में न होकर अत्यन्त कर्ण-कटु है। स्वामी जी महाराज की भाषा में तो पूर्णतया शालीनता का निर्वाह है। स्वयं सगुण पूजा के महापुराण अर्थात् श्रीमद्भागवत में बड़ी कड़ी भाषा सगुण पूजकों के लिये प्रयुक्त की गई है:—

यस्यात्यबुद्धिं कुणपेन्निधातुके

स्वधीकलत्तादिषु भौम यजधत्तीयबुद्धिः

सलिलेन कहचित्त जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः ।

[जो बात पित्त कफ आदि तीन मल वाले शरीर में अथवा स्त्री आदि में परमात्म बुद्धि रखता है—अथवा मिट्टी से बनी मूर्ति में पूजा-बुद्धि-अथवा पानी में तीर्थ बुद्धि रखता है, वह तो गौओं का चारा ढोने वाला गधा है] श्लोक के पूर्वार्ध में जो आदेश है, स्वामी दयानन्द ने वही अर्थपूर्ण कहा। तुलसीदास ने

साकार राम की पूजा जन-जन में प्रचलित करवा दी। परन्तु रामायण लिखते समय यह समस्या उनके भी सामने आई थी। पहिले तो उन्हें चरित्र नायक चुनना था। कृष्ण पर लिखें या राम पर? और वे मथुरा वृन्दावन गये। बिहारीलाल के मन्दिर पर कृष्ण की वह मूर्ति देखी जिसमें उन्हें मोर बनाया गया है और मोर के खुले मुख में सघस्नाता-राधा अपना जूड़ा उमेठ कर जल-कणों को उसमें गिराती दिखाई गई है। उसे देख कर तुलसीदास के मुख से यकायक यह चौपाई निर्झरित हुई :—

कहा कहों छवि आजु की भले बने ही नाथ ।

तुलसी मस्तक तब नर्व जब धनुष बाण लो हाथ ॥

ऐतिहासिक कारणों से विपन्न जन समुदाय को पुनर्जागृत करने के लिये श्रंगारी चरित्र-नायक न चुन कर धनुष-बाण से युक्त वीर पुरुष की ख्याति कथा और विजय-गाथा लिखने का निश्चय तुलसीदास ने वहीं किया था। परन्तु वाल्मीकि की मर्यादा का उलंघन करके महात्मा और वीरात्मा राम को भगवान कह डाला। व्यक्ति-पूजा की यह चरम प्रणीति थी। परन्तु ग्रन्थ प्रवेश करते हुये पहिले (बाल) कान्ड के दोहा २२ व २५ के बीच उन्हें यह विवाद हल करना ही पड़ा :—

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा, अकथ अगाध अनादि अनूपा ॥

मोरे मत बड़नाम दुहु ते, किये जेहि जुग निजवम निजबूते ॥

व्यापक एक ब्रह्म अविनासी, सत चेतन घन आनन्द रासी ॥

निरगुन तें एहि भाति बड़नाम प्रभाउ अपार ।

कहऊं नामु बड़ राम तें निज विचार अनुसार ॥ २३ ॥

फिर वे कहते हैं कि नाम की महिमा सगुण राम की करनी से तो लक्ष-गुणी अधिक है :—

१. राम एक तापस तियतारी । नाम कोटि खन कुमति सुधारी ।

२. भंजैउ राम आपु भव चापू । भव भय भंजन नाम प्रतापू ॥
३. दंडक वन प्रभु कीन्ह सुहावन । जन मन अमित नाम किये पावन ॥
४. निसिचर निकर दले रघुनन्दन । नामु सकल कलि कलुष निकंदन ॥
५. सवरीगीध सुसेवकनि, सुगति दीन्ह रघुनाथ ।
नाम उधारे अमित खल वेद विदित गुन गाथ ॥ २४ ॥
६. राम सुकंठ विभीषन दोऊ । राखे सरन जान सबु कोऊ ॥
नाम गरीब अनेक नेवाजे । लोक वेद वर विरिद विराजे ॥
७. राम भालु कपि कटकु बटोरा । सेतु हेतु श्रमुकीन्ह न थोरा ॥
नामु लेत सिन्ध सुखार्ही । करहु विचारु सुजन मन माहीं ॥
८. राम सकल रनु रावन मारा । सीय सहित निज पुर पगधारा ॥
सेवक सुमिरत नाम सप्रीती । त्रिनु श्रम प्रवल मोहदलु जीती ॥

ब्रह्म राम ते नामु बड़ वरदायक वरदानि ।

रामचरित सत कोटि महं लिय महेस जियं जानि ॥ २५ ॥

इस प्रकार तुलसीदास ने यह कहा कि मैं तीसरा ही मत प्रस्तुत करता हूं जो कि नाम गान की महिमा का है । और दोहा २५ के आगे की चौपाइयों में उसकी गौरव गाथा गाई है कि नाम के प्रसाद से शंभु, सुक, सनक, नारद, प्रह्लाद, ध्रुव, पवनसुत, आदि चारों युगों और तीनों कालों में जीव मात्र समेत गौरवान्वित हुये हैं । स्पष्ट है कि यह नाम राम का नहीं हो सकता । यह तो प्रभु का ओम नाम ही हो सकता है जिसके लिये व्यास ने कहा था :—

तस्य वाचकः प्रणवः ।

उसका वाचक ओउम नाम है । नाम का गान तात्पर्य रखता है ईश्वर के विभिन्न नामों की गुण-स्तुति और उन्हें अपने में जाने का प्रयत्न । नाम-जप तोता-रटन्त मात्र नहीं हो सकता है । शर्करा शर्करां रटने से मुख

कदापि मीठा नहीं हो सकता जब तक उसके गुणों का मानसिक चिंतन या उसे मुख से चखा न जावे।

इसका प्रतिपादन तुलसी के समकालीन मुस्लिम कवि “यारी साहब” ने भी यों किया है:—

रसना, राम कहत तैं थाकी।

पानी कहे कहुं प्यास बुझति है,

प्यास बुझे जदि चाखी।

पुरुष-नाम नारी ज्यों जानै,

जानि बूझि नहिं आखी।

तुलसीदास ने सगुण उपासना का जोरदार खण्डन करके जिस नाम जप प्रणाली की स्थापना की है, वह निराकार उपासना गुणोस्तुति पद्धति ही हो सकती है। मानस लिखते लिखते वे अपनी मूल प्रस्तावना से ही दूर चले गये।

[६]

पूजा की सच्ची पद्धति का पुनरुद्धार महर्षि दयानन्द ने किया। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आध्यात्मिक क्रान्ति का जो उद्घोष किया उसे अपने अमर ग्रन्थ संत्यार्थ प्रकाश के प्रथम समुल्लास में ही उन्होंने दिल खोल कर लिख दिया और उसके सार-वत ही उन्होंने आर्य समाज के प्रथम दो नियम रचे:—

१. सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।

२. ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्व शक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अजर, अमर, अभय, नित्य; पवित्र और सृष्टिकर्त्ता हैं, उसी की उपासना करनी योग्य हैं।

दयानन्द ने बहुदेवतावाद को यह कहकर समाप्त किया कि ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, काल, यम और अर्यमा उसी एक ईश्वर के पर्यायवाचक हैं।

नियन्ता होने से उसे ब्रह्मा, पालन करने से विष्णु और संहार करने और फल देने से उसी एक ईश्वर को रुद्र कहते हैं। अध्यक्ष होने से वह इन्द्र, कड़े फल देने से यम और कल्याणकारी होने से वह शिव है। और यह मत दयानन्द का अपना नहीं है।

कैवल्योपनिषत् में यों आया है :—

स ब्रह्मा स विष्णुः स रुद्रस्सशिवस्सोऽक्षरस्यं परमः स्वराट् । स इन्द्रस्स कालाग्निस्स चन्द्रमाः । [वही ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, अक्षर, इन्द्र, काल, अग्नि और चन्द्रमा है।]

पुराणों के दो उद्धरण और देते हैं :—

कूर्म पुराण अध्याय—४

रजोगुणमयं चान्य रूपं तस्यैव धीमतः ।

चतुर्मुखः स भगवान् जगत्सृष्टौ ।

सृष्टि च याति सकल विश्वात्मा विश्वतो मुखः ।

सन्व गुणंपुपाश्रित्य विष्णु विश्वेश्वरः स्वयं ।

अन्तकाले स्वयं देवः सर्वात्मा परमेश्वरः ।

तमोगुणं समाश्रित्य रुद्रः सहरते जगत् ।

एकोऽपि सन्महादेवस्त्रिवासी समवस्थितः ।

सर्गरक्षालयगुणं निर्गुणोऽपि निरजनः ।

[उन शक्तिमान भगवान का रजोगुण में चतुर्मुख रूप है। वह चतुर्मुख जगत की सृष्टि करने लगा। विश्वेश्वर आप ही सन्वगुण का अवलम्बन कर विश्वमुख विश्वात्मा विष्णु रूप से उत्पन्न हुये समस्त लोकों का पालन करते हैं। प्रलय काल में वे ही तमोगुण का आश्रय करके रुद्र रूप से सारी सृष्टि का संहार करते हैं। वे महादेव एक रूप होने पर भी त्रिविध रूप

[२१]

से विराजमान हो सृष्टि, स्थिति और प्रलय इन तीनों गुणों से त्रिविधि हुये]। यही विचार अग्नि पुराण के सगनिशासन अध्याय में मिलता है:—

सृष्टिस्थित्यन्तकरणाद् ब्रह्मविष्णु शिवात्मिकाः । सन संज्ञा याति भगवान् एक जनार्दनः । ब्रह्मत्वे सृजते चैव विष्णुत्वे याति नित्यशः । रुद्रत्वे चैव संहर्त्ता एको देवस्त्रिधां स्मृतः ॥

[केवल एक ही जनार्दन भगवान् सृष्टि स्थिति और प्रलय करते हैं। इसी से ब्रह्मा, विष्णु महेश यह उनकी तीन संज्ञायें हैं । एक वे ही तीन रूप से अर्थात् ब्रह्म रूप से सृष्टि-सृजन, विष्णु रूप से स्थिति (पालन) और रुद्र रूप से संहार करते हैं ।]

[१०]

दयानन्द ने कहा कि मेरे और मेरे ईश्वर के बीच और किसी विचौलिया (Middle Man) की आवश्यकता नहीं है । मेरा मेरे प्रभु से सतत साक्षान् सानिध्य है । इस सीधे प्रजातन्त्रवाद में विचौलिया के रूप में किसी अवतार, तीर्थंकर, पूर्ण-पुरुष, प्रभु-पुत्र, सन्देशवाहक या सतगुरु की आवश्यकता नहीं है ।

मूर्ति पूजा

श्वेताश्वर उपनिषद् में एक श्लोक आया है:—

शिवामात्यनि पश्यन्ति, प्रतिमास्तु न योगिनः ।
आत्मास्थं यः परित्यज्य बहिः स्थं भजते शिवं ॥
हस्तस्थं फलभुत्सूज्य, लिङ्गात् कूर्यक्षमात्मनः ।
सर्वत्रास्थितं शान्तं, न पश्यन्तीह शंकरम् ।
ज्ञानचक्षुर्विहीनत्वाद्धः सूर्य इवोदितम् ॥

इस पर शंकर स्वामी यों भाष्य करते हैं:—

[योगी लोग परमेश्वर को आत्मा में देखते हैं मूर्तियों में नहीं । जो आत्मा

[२२]

में स्थित प्रभु को छोड़कर बाहर उसकी पूजा करते हैं उनकी उपमा उनसे दी जा सकती है जो हाथ में स्थित योग्य पदार्थ को छोड़कर अपनी कोनी को ही चाटने लग जावें ।]

दयानन्द ने उदघोष किया कि जब चैतन्य बिचौलिये की पार्थिव पूजा अभिप्रेत नहीं है तो निर्जीव काष्ठ, लौह, प्रस्तर के रूप में कोई प्रतीक और कल्पित आराध्य देव भी साधन के रूप में प्रभु मिलन के लिये अपेक्षित नहीं है । तुम शीघ्र ही साधन को साध्य समझकर उसी की पूजा और शृंगार में मस्त होकर अपने जीवन के क्षण समाप्त कर बैठोगे ।

अ—जो पाथर को कहते देव, तिनकी निष्फल खाने सेव ।

कवीर के उक्त दोहे का श्रोत पूर्व वाङ्मय में ही है ।

अचेतना सत्यायोग्यान्यनुपास्यन्यफलत्व विपर्ययाभ्याम् ।

छान्दोग्योपनिषद् के भाष्य में संकर्षण सूत्र पर लिखते हुये माध्वाचार्य महाराज ने उक्त वाक्य लिखा है—जो अचेतन (जड़) असत्य और अयोग्य है, उसकी उपासना का कोई फल नहीं होता, वरन् उससे हानि होती है ।

ब—पत्थर पीवे घोय के, पत्थर पूजे प्राण ।

अन्तकाल पत्थर भये भव डूबे अज्ञान ॥

—दादू

॥ दरिया बीरे जगत को, क्या कीजे समझाय ।

रोग बीसरे देह में, पत्थर पूजन जाय ॥

—दरिया

इन सन्तों ने जो पत्थर पूजा का खण्डन किया है, अथवा “अजब हैरान हूँ वाले” आर्य-मजान में जो भाव अभिप्रेत हैं, उसके आदि प्रस्तुत कर्त्ता तो स्वयं आदि शंकराचार्य हैं :—

[२३]

स्वामी शंकराचार्यकृत "परापूजा" से
 पूर्णस्यावाहनं कुत्र सर्वधारस्यचासनम् ।
 स्वच्छस्य पाद्यमर्घ्यः च शुद्धस्याचमनम् कुतः ॥
 निर्मलस्य कुतः स्नानं वस्त्रविश्वोदरस्य च ।
 अगोत्रस्य त्ववर्णस्य कुतस्तस्योपवीतकम् ॥
 निर्लोपस्य कुतोः गन्धः पुष्पं निर्वासनस्य च ।
 निर्विशेषस्य का भूपा कोऽलंकारो निराकृतेः ॥
 निरञ्जनस्य किं धूपैर्दीपैर्वा सर्वसाक्षिणः ।
 निजानन्दैकतृप्तस्य नैवेद्यं किं भवेदिह ॥
 विश्वानन्दमितुस्तस्य किं ताम्बूलं प्रकल्पते ।
 त्वं प्रकाशचिद्रूपो योऽभावर्कादिभासकः ॥
 प्रदक्षिणाह्वयनन्तस्य ह्यद्वयस्य कुतो नतिः ।
 वेदवाक्यैरवेद्यस्य कुतः स्तोत्रं विधीयते ॥
 स्वयं प्रकाशमानस्य कुतो नीराजनं विभोः ।
 अन्तर्वहिश्च पूर्णस्य कथमुद्रासनं भवेत् ॥

कहा जाता है कि शंकराचार्य जी महाराज जब बड़ी केदार पहुंचे और
 वहां प्रभु की रचना का सुन्दरतम रूप देखा तो आनन्द विभोर हो गये और
 जिस ज्योतिर्लिङ्ग की उपासना करने गये थे उसी के सम्मुख खड़े होकर
 कहने लगे कि मैंने अनेक पाप किये हैं और महान भूलों की हैं, उन्हीं का
 परिमार्जन कर डालना चाहता हूँ—वे भूलें प्रभु की मूर्तिमान, मूर्ति पूजा
 हेतु बड़ी केदार आकर की हैं । क्योंकि :—

१. जो पूर्ण है उसका आह्वान कहाँ किया जावे ?
२. जो सबका आधार है उसे किस वस्तु का आसन दिया जावे ?
३. जो स्वच्छ है उसके पाद्य और अर्घ्य क्या है ?
४. जो निरञ्जन है उसे क्या आसन दे ?

[२४]

५. निर्मल को स्नान किस लिये ?

६. सारा ससार जिसके पेट में है, उसके लिये वस्त्र कैसा ?

७. जो वर्ण गोत्र रहित है, उसे यज्ञोपवीत कैसा ?

८-११. निर्होप के लिये गन्ध, निर्वसन के लिये पुष्प, निर्विशेष के लिये भूषा और निराकार के लिये अलंकार का क्या प्रयोजन ?

१२-१४. निरन्जन को धूप, सर्वसाक्षी को दीप, स्वानन्द में तृप्त को नैवेद्य से क्या प्रयोजन ?

१५. विश्व को आनन्द देने वाले और स्वप्रकाश रूप सूर्यादि को प्रकाश देने वाले चिद्रूप के लिये ताम्बूल क्या ?

१६-१८. अनन्त की परिक्रमा अद्वितीय को नमस्कार, वेद वाक्यों से भी अवेद्य का स्तवन कैसे हो ?

१९-२१. जो स्वयं प्रकाशमान विभो है उसकी आरती कैसी ? जो अन्दर बाहर सर्वत्र परिपूर्ण हो रहा है उसका विसर्जन कैसा ?

इन २१ शंकाओं में मूर्तिपूजा का अभूतपूर्व खण्डन है। परन्तु आश्चर्य इतना ही है कि तदापि शंकराचार्य जी यावज्जीवन मूर्ति पूजा कैसे करते रहे। चारों धामों पर जो चार पीठ निर्मित कीं, उनमें भी प्रतिमाये स्थापित की गईं और स्तोत्र रचे गये। इसके दो ही कारण हो सकते हैं। एक तो शंकराचार्य की दार्शनिक स्थिति में व्यावहारिक सत्य और नित्य सत्य में भेद होता है। उनका अद्वैत दर्शन तो स्वयं ईश्वर को जग की झूठी माया से आवृत्त करा के लीला करवाता है। सम्भवतः यह मूर्ति पूजा उसी माया की कृति है। अथवा यों हो सकता है कि दक्षिणात्य देश की मूर्ति-पूजा को पुष्टिनी विरासत समझ कर उसे बुद्धि और तर्क से परे होते हुये भी उसी प्रकार जिन्दा रखना चाहते थे जैसे हजरत मुहम्मद जबरदस्त एकीश्वरवादी होते हुये भी मंगे असुद को मुबका के शिवालय से न हटा सके यद्यपि उन्होंने मन्दिर का नाम मस्जिद रख दिया और अरब देश में स्थित सारे बुत

[२५]

तुड़वा डाले । जो भी हो दयानन्द ने मान्यता और व्यवहार में अन्तर नहीं आने दिया । जो तर्क से सिद्ध था और आप्त वाक्यों से सु-प्रमाणित था, उसी का उद्घोष किया और उसी को माना एवं उसी हेतु पाखण्ड-खण्डिनी पताका को उठाया ।

वेद के निम्न उद्घोष की डिमडिम उन्होंने बजाई :—

न तस्य प्रतिमास्ति यस्यनाम महद्यशः ।

हिरण्यगर्भ इत्येषमा या हि , सी दित्येषा

यस्मान्न जातइत्येषः ॥ यजु० ३२-३ ॥

जो अजन्मा है, सृष्टि का गर्भवत कारण है, उसकी प्रतिमा कैसी ?

जो लोग कहते थे कि प्रतिमा पूजन एक ध्यान लगाने की सोपान है उनकी सेवा में मात्र २ सूत्र ऋषि ने प्रस्तुत किये :—

१. ध्याने निर्विषयं मनः । योग दर्शना

[ध्यान में तो मन निर्विषय होना चाहिये । अर्थात् उसमें जो कुछ भी इन्द्रियों द्वारा भेजा विषय भरा है, उसे निकालना अभिप्रेत है, न कि उसमें साकार पदार्थ के दृष्ट गुण (आकार-श्र गार) लाकर भरना] ।

२. युगपदज्ञानानोत्पत्तिर्मनसोलिङ्गम् ॥

[मन का यह गुण है कि उसमें एक समय में एक ही भाव रह सकता है ।] [योग दर्शन] ।

अस्तु यदि मूर्ति सम्बन्धी भाव रहा तो प्रभु के गुणों का भाव नहीं रहेगा और यदि प्रभु सम्बन्धी भाव रहा तो मूर्ति सम्बन्धी भाव की गुंजायश ही कहाँ है ?

हर कर्म के संस्कार बनते रहते हैं । वे संस्कार फिर अपना प्रस्फुटी-करण चाहते हैं । मूर्ति पूजा—जन्य संस्कार अगली सीढ़ी चढ़ने पर कदापि छूट नहीं सकती ।

[२६]

[११]

अग्नि-वायु-सूर्य-जल की पूजा

वैदिक मन्त्रों में अग्नि व वायु की प्रशंसा की गई है क्योंकि वे मानव के सुख का पार्थिव मूल हैं ।

“ अग्नि ”

अग्निमीडे पुरोहितम् यज्ञस्य ऋत्विजम् होतारम् रत्नधातमम् ।

यह प्रथम वेद ऋग्वेद का प्रथम मंत्र है और अग्नि के गुण बखानता है । उसके माध्यम से यज्ञ प्रक्रिया होकर सुगन्धि फैलती है । वर्षा के पर्जन्य बनते हैं । वायुमण्डल में खाद बनती है । सब अन्न पकते हैं । पृथ्वी के अन्तर्गत परिवर्तन होकर रत्न बनते हैं । कारवन में अथाह कैलोगी अग्नि देकर ही हीरे बने हैं । रत्नगर्भा पृथ्वी के अन्दर धातुओं का निर्माण अग्नि ही से होता है ।

“ सूर्य ”

तरणि विश्व दर्शतो ज्योतिष्कंदसि सूर्य । विश्वमा भासि रोचनं ।

यहां सूर्य के कारण प्रकृति में निम्न परिवर्तन होना बताया है :—

तरणि=रंग (VIBGYOR) क्रम में रंगों का मूल सूर्य किरण ही है ।

दर्शतो=प्रकाश का श्रोत

रोचनं=विश्व का रोचक लगना

ज्योति=गर्मी (Heat का मूल श्रोत)

“ वायु ”

वायवाहि दशंते मे सोमा अरं कृताः तेषां पाहि श्रुधोहवम् ॥

[२७]

वायु में चलन शीलता की गति है। वायु वह Medium है जिसमें होकर प्रकाश व शब्द फैलते हैं। वायु में लहरें उठ कर शक्ति को इधर उधर ले जाती हैं। वायु में ही प्रकाश की किरण शून्य से प्रथम प्रवेश करती है, और वह किरण कुछ झुक जाती है। वायु से ही सोम लतावल्ली प्राण पाती हैं।

“ जल ”

सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान द्वे ण्डि यन्नचवयं द्विषमः । यजु० ३६।२३ ।

[हे सर्व मित्र सम्पादक ! आप की कृपा से प्राण और जल तथा विद्या और औषधि हम सब लोगों के लिए सदा सुखदायक हों, कभी प्रतिकूल न हों। परन्तु जो हमसे द्वेष करता हो और जिससे हम द्वेष करते हों, उस द्वेष भाव के रोग को यह शीतल जल ठंडा कर दे]

जल औषधि है। जल से क्रोध और द्वेषभाव शान्त होता है। “कूने” ने तो जल से ही सारी बीमारियों के शमन की पूरी चिकित्सा पद्धति रच डाली है।

“ विद्युत् (पूषण) ”

पूषन् एक जनषे यम सूर्य प्रजापत्य व्यूह रश्मीन समूह ।

यत ते रूपम् कल्याणतमम् तत् ते पश्यामि असौ पुरुषः असौऽहमस्मि ॥

यजु० ४०।१६ ।

ऐ विद्युत् ! तू ही प्रजापति सूर्य की रश्मियों को खींच कर पृथ्वी पर लाती है। दक्षिण दिशा की ओर तेरी किरणें (Lines of Force) सतत प्रवाहित हैं। तेरे माध्यम से रूप की किरणें (Rays of light) भी प्रवाहित हैं। प्रकाश, विद्युत् और गति एक दूसरे में परिवर्तनशील हैं। तेरी इन

[२८]

शक्तियों को मनुष्य के लिये सर्वोत्कृष्ट कल्याण से युक्त अर्थात् लाभप्रद बनाना है। तुझ को ऐसा करके मानने वाला वह पुरुष मैं हूँ। अर्थात् विद्युत् को जन कल्याण में प्रयुक्त करने का मैं व्रत लेता हूँ।

पृथ्वी

अथर्व वेद । पृथिवी सूक्त ।

यस्याश्चतस्रः प्रदिशः पृथिव्या

यस्यामन्नं कृष्टयुः संवभूवुः ।

या विभर्ति बहुधा प्राणदेजत्

सा नो भूमिगोष्वप्यन्ते दधातु ॥ मंत्र—४ ॥

विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा

हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी ।

वैश्वानरं विभ्रति भूमिरग्नि

भिन्द्र ऋषभा द्रविणे नो दधातु ॥ मंत्र—६ ॥

पद्यानुवाद

जिसकी उत्तम चार दिशाओं से सब लोक पुनीत हुये ।

जिसमें सुन्दर अन्न और शुभ मानव कुल संभूत हुये ।

सदा प्राणियों का होता है जिसमें भरण और पोषण ।

हम सब को वह भूमि सदा दे मीठे अन्न और गोघन ।

विश्व भरण करने वाली, वसु को धारण करने वाली ।

सदा प्रतिष्ठित, जगत निवेशिनि, सोने की छाती वाली ।

वैश्वानर का और अग्नि का नित पालन करने वाली ।

इन्द्र-प्रिया वह भूमि, जहाँ हम सुख-सम्पत्ति-प्राप्ती ।

यह प्रार्थना किसी एक देश की भूमि के लिये नहीं है। हर देश का निवासी अपनी मातृ-भूमि के प्रति ही नहीं सारी पृथ्वी के लिये ऐसा कह सकता है। मैं इस सारी पृथ्वी का पुत्र हूँ क्योंकि यह अन्न जल का पान कराती है।

सब भूमि गोपाल की जामै अटक कहा ।

जाके मन में अटक है सोई अटक रहा ॥

यह अन्तर्राष्ट्रीयता का उपदेश है। और सकल पृथ्वी से भोग पदार्थ—कृषि जन्य एवं उसके अन्तर में बसे स्वर्णादिक धातु, प्राप्त करने की आज्ञा है।

राष्ट्रीयता और स्वस्व देशस्थ भूमि की पवित्रता मान कर जो देश-भक्ति उत्पन्न की गई है वह तो राष्ट्रीय ईर्ष्या-द्वेष की जनक होकर युद्धों और महायुद्धों का कारण बनी हैं। अस्तु राष्ट्रीयता एवं अन्तर्राष्ट्रीयता दोनों में तालमेल रखना आवश्यक है। निज जन्मभूमि की अतिशय पूजा भी वर्जित होनी चाहिए। कोई राष्ट्र या कहीं की भूमि या राष्ट्रीय विरासत स्वर्गीय नहीं है। भारत में हिमालय, विन्धाचल प्रभृति पर्वत, गंगा, यमुना और कावेरी सदृश नदियों और प्रयाग एवं रामेश्वरम् प्रभृति नगरों को पूज्य बताया है। सो मात्र देशभक्ति के कारण।

लंका विजय के उपरान्त लक्ष्मण ने राम से कहा था कि भाई अब यहीं बस कर राज्य भोग किया जावे—पता नहीं १४ वर्षों में भरत के क्या विचार बने हों। तब रामायण-कार महर्षि वाल्मीकि ने रामचन्द्र जी के मुख से यह कहलवाया है:—

यद्यपि स्वर्णमयी लंका तदपि न मे रोचते लक्ष्मण ।

जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ॥

यहां रामचन्द्र जी जन्म भूमि अवध को स्वर्ग से बढ़कर बताते हैं ।
पर उसकी पूजा स्तुति कहीं नहीं की है । कालान्तर में रामचरित मानस में
तुलसीदास जी वन से विमान द्वारा लौटने पर सुरसरि-गंगा, तीर्थराज-प्रयाग
और सुहावनी अवधपुरी की वन्दना करते दिखाये गये हैं:—

पुनि देखी सुरसरी पुनीता । राम कहा प्रनाम कर सीता ॥
तीरथपति पुनि देखि प्रयागा । निरखत जन्म कोटि अघ भागा ॥
देखि परम पावन पुनि वेनी । हरनि सोक हरि लोक नसेनी ॥
पुनि देखि अवधपुरी अति पावनि । त्रिविध ताप भय रोग नसावनि ॥

[लंकाकाण्ड दोहा ११६ चौ० ५ से ६]

विष्णु पुराण [२।३।२४] में यों गाया गया है:—

गायन्ति देवाः किल गीतिकानि घन्यास्तु ते भारत भूमि भागे ।
स्वर्गापवर्गास्पद हेतु भूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात् ॥

देवता भी भारत भूमि में पुनः जन्म पाने की कामना करते हैं, क्योंकि
यहां की भूमि और जलवायु ही मोक्ष की ओर प्रेरित करते हैं ।

गंगा की प्रशंसा में कहा है कि जो शत योजन दूर से भी गंगा का
नाम लेता है, वह सब पापों से तर कर सीधा मोक्ष को जाता है ।

लंदन में थेम्स नदी को और फ्रान्स में ऐल्ब और जर्मनी में डैन्यूब को
ऐसा ही पूज्य कहा गया है । परन्तु ईश्वर की विशेष कृति इनमें से कोई नहीं
है । इनकी प्रशंसा की जा सकती है; पूजा और आरती एवं अर्चना नहीं ।
कोई कुछ भी कहे इनकी पूजा किसी आध्यात्मिक उपलब्धि का साधन कदापि
नहीं है । न वह पाप-हर है, न आत्मिक-उन्नयन की सोपान । यदि उनके
जलों में वैषिट्य है तो वह रोग हर सकता है, पर ईश्वर सानिध्य का कारण
वह कदापि नहीं है । देशभक्ति और ईश्वर भक्ति एकार्थक नहीं है । सच्चा

ईश्वर भक्त तो अन्तराष्ट्रीय ही नहीं, सब लोकों के सब लोगों और पशुपक्षी तक के सुख की कामना कर कहता है—सर्वेभवनतु सुखिना, सर्वे सन्तु निरामय । हाँ, इन पार्थिव देवों का उपयोग करना तो सर्वत्र अवश्य लिखा है, इनकी वन्दना करना नहीं । इन्हें तो भृत्यवत् काम में लाना चाहिए । कुछ सम्प्रदायों में (जैसे पारसियों में) अग्नि, वायु, जल (सर या कूप या समुद्र) की पूजा का प्रचलन है । भला इन अचेतन पदार्थों की पूजा कैसी ? इनकी की हुई पूजा को तो ये स्वयं नहीं समझते हैं—अस्तु यह निरर्थक ही हुई ।

[१२]

हाँ वेदों में तथा अन्य वाङ्मय में अग्नि वायु आदि की यत्र-तत्र स्तुति आई अवश्य है । परन्तु जहाँ वह पार्थिव अर्थ में जग में प्रयोगात्मक विधि दर्शाती है, वहाँ अध्यात्म में, (चूँकि वह आध्यात्मिक कृति है) उसके शाब्दिक अर्थ प्रभु परक हैं—जैसी कि उनकी व्युत्पत्ति व्याकरण से है । इस गुत्थी को भी महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सुलझा दिया है । एक ऐसे ही स्तुति मन्त्र पर स्वामी जी महाराज का अन्वयार्थ हम आर्याभिविनय से उद्धृत करते हैं—
[द्वितीय प्रकाश मंत्र क्र० ४]

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तद् चंद्रमाः ।

तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म आपः स प्रजापतिः ।

[यजु० ३२।१]

“जो सब जगत का कारण एक परमेश्वर है उसी का नाम अग्नि है ।

[ब्रह्म ह्याग्निः शतपथे—१।१।१।११] ।

सर्वोत्तम ज्ञान स्वरूप और जानने के योग्य, प्रापणीय स्वरूप और पूज्यतमोत्यादि अग्नि शब्द के अर्थ हैं ।

जिसका कभी नाश न हो और स्वप्रकाश स्वरूप हो, इससे परमात्मा का नाम आदित्य है । [आदित्यो वै ब्रह्म—शतपथब्राह्मण ७।४।१।१४]

सब जगत का धारण करने वाला, अनन्त बलवान, प्राणों से भी जो प्रिय स्वरूप है, इससे ईश्वर का नाम वायु है। [वायुर्वेदब्रह्म]। जो आनन्द स्वरूप और स्वसेवकों को परमानन्द देने वाला है, इससे पूर्वोक्त प्रकार से चन्द्रमा परमात्मा को ही जानना। [चन्द्रमा वै ब्रह्म-ऐतरेय २।४१]।

‘तदेव शुक्रम्’—वही चेतन स्वरूप ब्रह्म सब जगत का कर्ता है। [शुक्रं हि ब्रह्म]। ‘तद्ब्रह्म’ सो अनन्त चेतन सबसे बड़ा है। और धर्मात्मा स्वभक्तों को अत्यन्त सुख विद्यादि सद्गुणों को बढ़ाने वाला है। ‘ता आपः’ उसी को सर्वत्र चेतन सर्वत्र व्याप्त होने से ‘आपः’ नामक जानना। [आपो वै प्रजापतिः। शतपथ ब्राह्मण—८-२-३-१३]।

“स प्रजापतिः” सो ही सब जगत का पति (स्वामी) और पालन करने वाला है, अन्य कोई नहीं।

उसी को हम लोग इष्ट-देव तथा पालक मानें, अन्य को नहीं ॥”

फिर इनकी भी शक्ति का श्रोत स्वयं एक ईश्वर ही है। यह समस्या स्वयं वेद ने आदि सृष्टि में हल कर दी थी:—

यस्य भूमिः प्रभान्तरिक्षमुतोदरम् ।

दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्राह्मणे नमः ।

यस्य सूर्यचक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः ।

अग्नि यश्चक्रे आस्ये तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ।

यस्य वातः प्राणयानौचक्षुरङ्गिरसोऽभवन् ।

विशो यश्चक्रे प्रज्ञानीतस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ।

[अथर्व वेद १०।७।३२ से ३४ तक]

अर्थात् भूमि उस ब्रह्म की पादस्थानी, अन्तरिक्ष ऊपर के समान, धु मस्तक के समान, सूर्य और चन्द्र जिसके नेत्र हैं, अग्नि जिसका मुख, वायु जिसके प्राण

[३३]

अपान, प्रकाश किरण नेत्रवत और दिशायें व्यवहार बताने वाली हैं। उस सबसे बड़े ब्रह्म को ही पूजें—नमस्कार करें।

यह बात बड़े मनोरंजक ढंग से केनोपनिषद में वर्णित है कि एक बार इन अग्नि, वायु एवं जल की शक्तियों को गर्व हो गया कि हम ही इस सृष्टि का संचालन करते हैं। तब प्रभु ने यक्ष बनकर इनकी परीक्षा ली और क्रमशः तीनों के सामने एक तिनका रखा कि इसे जलाओ, उड़ाओ या बहाओ; जैसा कि तीनों शक्तियों अग्नि, वायु एवं जल का गुण है। पर वे तिनके को हिला तक न सके। तब ऋतं—भरा—प्रज्ञा बुद्धि ने उन्हें समझाया कि तुम्हारी शक्ति का आदि श्रोत तो स्वयं यह परीक्षक था। इसने तुम्हारी शक्ति छीन ली। तब तुम निर्धैर्य हो गये। कुछ न कर सके। उपनिषद ने बार-बार यही कहा कि “नेदम् यदिदम् उपासते।” इन पार्थिव पदार्थों की पूजा का प्रकरण ठीक पद्धति नहीं है। शक्ति के आदि श्रोत को ढूँढ़ना चाहिये। यह पार्थिव पदार्थ तो जीवन यापन के लिये हैं।

शं नो वातः पवता , नस्तुपतु सूर्यः ।

शं नः कनिक्कदद्देवः पर्जन्यो अभिवर्षतु ॥

[यजु० ३६।१०]

इसका स्वामी दयानन्द सरस्वती आर्याभिविनय [द्वितीय प्रकाश, मंत्र क्र० २२] में यों अर्थ करते हैं—

“हे सर्वनियन्तः हमारे लिये सुखकारक सुगन्ध शीतल और मन्द मन्द वायु सदैव चले। एवं सूर्य भी सुखकारक हो तपे। तथा मेघ भी सुख का शब्द लिये अर्थात् गर्जन पूर्वक सदैव काल-काल में सुखकारक वर्षे। जिससे आपके कृपा पात्र हम लोग सुखानन्द ही में सदा रहें।”

[३४]

[१३]

मूर्तियों का महात्मय

परन्तु सर्व साधारण को मूर्ति की ओर आकृष्ट करने और उसकी पूजा का तारतम्य चलाये रखने में ईश्वर पूजा की बात न कहकर उसकी विभूति और उसके चमत्कारों की किंवदन्तियों का प्रचलन लोक-भीत और लोक-कथाओं में कर दिया गया है। इनके विषय में सरयार्थ प्रकाश में स्वा० दयानन्द सरस्वती ने विशेष और प्रथक प्रथक लिखा है। भारत वर्ष में अत्यधिक महात्मय की ४ ही मूर्तियाँ बताई गई हैं। गुजरात प्रान्तस्थ महादेव का लिंग जो पहिले पृथ्वी से ऊपर हवा में स्थित था। इसका कारण इसका धातु का होना और छत्तों में चुम्बकीय लौह का होना था। गजनवी ने जब छत गिरा दी तो यह चमत्कार समाप्त हो गया और मूर्ति पृथ्वी पर आ टपकी। जगन्नाथपुरी में काठ की मूर्ति का स्रजन प्रति तृतीय वर्ष होता था और उसकी प्राण प्रतिष्ठा के समय पूर्व स्थापित लौह के लिंग पर चढ़ाये हुये दूध का चरणामृत पान राजा, बड़ई (मूर्ति-निर्माता) और पूर्व कार्यवाहक करते थे और वे मर जाते थे। १६१२ के लगभग राजा विलायत से शिक्षा प्राप्त कर के आया था। उसका एक इंगरेज मित्र अचानक इस पर्व से ८ दिन पूर्व अतिथि बन कर आ गया। उसने मित्र को शान्त व उदासीन पाया। कारण पूछने पर उसने बताया कि मेरा मात्र ८ दिन जीवन शेष है। ८ वें दिन मैं चरणामृत पान करूँगा और देव मुझे स्वर्ग में बुला लेगा। इंगरेज मित्र ने देवता के दर्शन की आज्ञा चाही, पर अहिन्दू होने से आज्ञा न मिली। वह किसी प्रकार रात्रि में वहाँ जाकर मूर्ति का सूक्ष्म निरीक्षण करने लगा। दूसरे दिन उसने राजा से कहा कि आज ही उस मूर्ति का धोवन मंगाओ। मैं पान करूँगा। धोवन आ गया और विज्ञान के ग्रेजुएट ने उसको टेस्ट करके बताया कि उसमें विष था। धातु निर्मित उस धातु पर विष की पर्तें हैं। तुम निर्दिष्ट धोवन को उसी तिथि पर पहिले पुजारी को पीने को कहना। उस दिन पुजारी ने पीने से मना कर दिया। तब राजा ने सब भेद खोला। वह राजा अभी जीवित है। ठीक यही बात स्वामी जी महाराज ने पुरी की प्रथा के बारे में १९ वीं शताब्दी में मत्स्यार्थ प्रकाश में लिख दी थी।

[३५]

उदयपुर और चित्तोड़ के मार्ग में महाराणा प्रताप के परिवार के मन्दिर हैं। कुल देवी के सामने शिखौदिया कुल के सस्थापक रांना सांगा की आदमकद मूर्ति हथ जोड़े खड़ी है। नीचे नंदी बना है। मुझे बताया गया कि इस बेल की मूर्ति में स्वयं और गजेव ने प्रहार किया तो उसके अन्दर से भीरों ने निकल कर सुल्तान और उसके साथियों को स्थान स्थान पर काटा। सुल्तान इसे दैवीय विपत्ति समझ कर लौट पड़ा। पर इसमें तो अवसर की बात है। पत्थरों के छेदों में भीरे छत्ते रख ही लेते हैं।

इस प्रकरण में भारत वर्ष के सर्व श्रेष्ठ और धनाढ्य मन्दिर तिरुपति के वाला जी का उल्लेख करना आवश्यक है, जिनके दर्शन के लिये ७॥) से लेकर ५००) तक का टिकिट खरीदना होता है। पार्श्व में एक कमरे में कपड़े का वितान है। जिसे हुन्डी कहते हैं। कपड़ा नीचे के कमरे में बीच से जाता है ताकि इसमें डाला दान नीचे के कमरे में पहुंच जाता है। इसमें कई लाख रुपये का प्रतिदिन दान आता हैं। लगभग ५००० यात्री नित्य पहुंचते हैं। पर ऐसा निर्देश है कि इस वितान में वे ही रुपया डालें जिनकी इच्छा पूर्ण हो चुकी हो और जो इच्छा वे अपने वहां पूर्व आगमन के समय मनाती कर गये हों।

मैंने अनेकों हुन्डी डालने वालों से पूछा और प्रत्येक ने कहा कि वह गत वर्ष कुछ मांग गया था और उसकी इच्छा पूरी हो चुकी है। वहीं के एक विद्वान पुजारी से मैंने शंका की कि ऐसा क्यों कर होता है। अचेतन मूर्ति चेतन पुरुष की चेतन इच्छायें कैसे पूरी कर देती है? वह एक विद्वान पुरुष था। गणित में एम० ए० पास था। उसने मेरी शिक्षा-दीक्षा के विषय में पूछने के उपरान्त बताया कि यह Theory of Probability सम्भावना की थ्योरी का चमत्कार है। पाठक इसे समझ लें।

एक हाल में बिल्ली बन्द हो गई। उसमें दो छेद थे। तो एक छेद में से बिल्ली के निकलने की सम्भावना $\frac{1}{2}$ अर्थात् ५० प्रतिशत है। यदि तीन

[३६]

छेद होते तो $\frac{1}{3}$ होती। इसी प्रकार हर व्यक्ति की इच्छा या तो पूरी होगी और या नहीं। दो ही विकल्प हैं। अतः सम्भावना $\frac{1}{3}$ हुई। इसका तात्पर्य यह हुआ कि बालाजी या किन्हीं जी की कृपा हुये बिना ही आधे यात्रियों की इच्छा स्वमेव ही पूरी हो जावेगी। आधों की नहीं। वे प्रथम आधे लौटकर बालाजी आवेंगे ही क्योंकि मनौती मनाते समय यह वचन लिया जाता है। शेष आधे जो असफल होते हैं, लौटकर नहीं जाते हैं। पर जाने वाले आधे लौटकर सत्य भावना से बालाजी के माहात्म्य का डिंडिन-घोष करते हैं। और नये लोग आकृष्ट होते हैं। इस प्रकार ५००० दैनिक यात्रियों का क्रम सदा बना रहता है और हुन्डी में वे ही लोग शत प्रतिशत पाये जाते हैं जिन की इच्छा पूर्ण हो चुकी होती है। पुजारी ने समझाया कि हम तो सम्भावना की थ्योरी का खाते हैं।

हमारे देश में राजस्थान में एक बालाजी और हैं जहां निसंतान स्त्री-पुरुष सन्तान का वर्धन प्राप्त करने जाते हैं। कहीं पर रोग-शान्ति की दन्त कथा प्रसिद्ध है। पर इन सब स्थान—माहात्म्यों में गणित का उपरोक्त वैज्ञानिक सिद्धान्त लागू है। रोम, फ्रान्स, जर्मनी, पॅलेस्टीन, मक्का सब जगह यही कहानियां प्रसिद्ध हैं। कहीं राख बाँटते हैं। अजमेर में पर्वत के ऊपर की दरगाह में बताते हैं कि हजरत अली दफनाये गये हैं। और हर दर्शक को राख खाने को देते हैं कि इससे सब रोग दूर हो जावेंगे। रोम में ऐसे तालाब हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि स्थान स्थान पर अर्द्ध-बुद्धि या निर्बुद्धि मनुष्यों का मन हरने के लिये माहात्म्य की झूठी किंवदन्तियां प्रचलित कर दी हैं। इन सब में कोई सार नहीं है। निर्जीव पदार्थ किसी का कुछ नहीं बना सकता है। और कुछ विगाड़ना तो नितान्त असम्भाव्य है। यदि किसी मूर्ति में ऐसा प्रभाव होता तो मूर्ति भंजक मुसलमान विजेताओं की न केवल युद्ध-विजय न हुई होती, वरन् महती विनष्टि हुई होती। पर ऐसा कुछ हुआ नहीं। उलटे काशी, अयोध्या, मथुरा, द्वारिका प्रभृति सब तीर्थ स्थानों पर प्रवित्रतम मूर्तियों को छिपाकर कूड़े आदि में रखा गया।

[३७]

हम इस प्रसंग में ईश्वर से यही प्रार्थना करेंगे कि—

असतो मा सद्गमय ।

तमसो मा ज्योतिर्गमय ॥

मृत्योर्मा मृतमगमय ॥

[१४]

उन्नीसवीं शताब्दी की दो क्रांतियाँ

विश्व में दो महान विचारक १९वीं शताब्दी में ऐसे हुये जो इतिहास के मरुस्थल पर अपनी अमिट छाप छोड़ गये हैं। वे दोनों समकालीन थे। योरूप में मार्क्स और भारत में दयानन्द। मार्क्स ने कहा ईश्वर है नहीं। वह तो मानव ने नशे में आकर स्वीकृत किया है। (Opiate of the People) उसने न केवल मनुष्य की स्वतंत्र कर्त्तव्य शक्ति ही छीन ली वरन उसे मिट्टी आदि से निर्मित घराँदा बताया। यह घराँदा गर्भ स्थापन के साथ पैदा होता है और द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद में कालान्तर में सदा के लिये नष्ट हो जाता है और अपने दैनिक क्रिया कलाप में वह प्रकृति-नियति द्वारा निर्धारित एक ऐतिहासिक पद्धति से बंधा हुआ है। [Historical Materialistic Purpose of Universe] वह कुछ भी करने में स्वतंत्र नहीं है। हाँ भोग पदार्थों का उत्पादन करने के लिए ही वह बनाया गया है। मार्क्स की क्रांति का उत्तम पहलू मात्र यह है कि उत्पादक और भोक्ता के बीच में मध्यम वर्ग या विचौलिया नहीं चाहिये। इन्किलाव का व्यवहारिक अर्थ यही है और इस इतने अंश से आकर्षित होकर ही आज पृथ्वी तल के आधे राष्ट्रों की सरकारों पर इस दर्शन शास्त्र के मानने वाले बुद्धिवादियों ने बलपूर्वक अधिकार कर लिया है।

दयानन्द ने दूसरी ओर यह कहा कि मनुष्य अजर-अमर है। प्रभु ही की भांति वह सदा से है, सदा रहेगा। वह कर्म करने में पूर्णतया स्वतन्त्र है। उसके कर्मों का प्रवाह किसी नियति या ऐतिहासिक अनिवार्यता से नहीं बंधा है। यह सृष्टि सोद्देश्य है। इसका नियन्ता हैं। जो सबको कर्मानुसार फल देता है। सारी सृष्टि न्याय पर आधारित है। कर्म फलों के कारण विश्व में विभिन्नता है और वैषम्य है। उपभोक्ता और उत्पादक के बीच में

[३८]

तो देश काल की दूरी के कारण विचौलिया कदाचित् यांचित हो, पर आत्मा और परमात्मा के बीच कोई भी विचौलिया अनावश्यक है। ईश्वर प्रत्यक्ष साक्षी और चेता हैं और हर जीव के किये कर्म का प्रत्यक्षदर्शी होने से वह यथोचित न्याय ही करता है। न स्वयं के स्वभाव से और न किसी विशेष विचौलिया की सिफारिश या माध्यम से वह आशीर्वाद देता हैं, न ही श्राप। प्रकृति के पदार्थ प्रभु ने जीव के उपभोग को प्रस्तुत किये हैं। इन्हे परस्पर प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तते हुये काम में लाना चाहिये और इस प्रकार शारीरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति करनी चाहिये। प्रत्येक हितकारी कार्य में सब स्वतन्त्र हैं और सामाजिक सर्व हितकारी कार्य में परतन्त्र। सम्भवतः इस क्रांति पर आधारित समाज बीसवीं सदी के अन्त तक बन सकेगा।

[१५]

निराकार की उपासना पद्धति से संसार के मानवों का अतिशय लाभ अपेक्षित है। मनुष्य की परवशता छूट जाती है। दयनीय होकर वह किसी और दूसरे मनुष्य के सामने न कनावड़ा पड़ता है, न कोई भीख मांगता है। उससे क्या मांगे जो स्वयं ईश्वर से मांगता है? सीधे ईश्वर से ही क्यों न मांगे।

दीन हों दयालु दानि दूसरो न कोऊ।

जासों हों दीनता कहैं देखों दीन सोऊ ॥

तुलसीदास

निराकार और निरवतार पूजा से मनुष्य और समाज में बल पैदा होता है कि हमारी रक्षा हमने स्वयं अपने श्रम से अर्जित करनी है। हमें बचाने ईश्वर कभी प्रगट नहीं होंगे। निराकार पद्धति से समाज में Hero worship नेता की पूजा नहीं फैल पाती। यह प्रजातान्त्रिक

समाज के निर्माण में सहायक होती है। निराकार पूजा एक (Universal Police) सर्व व्यापक—पोलिस का डर सर्वत्र उपस्थित करके समाज में भय उत्पन्न कर उसे सुपथ की ओर प्रेरित करती है। निराकार एक आदर्श ध्येय और परिपूर्ण ध्येय प्रस्तुत करता है जिसके साम्य के लिये प्रयत्नशील होने में जनता का चरित्र निर्माण होता है। पूजा की यह पद्धति आडम्बर रहित है और इसके लिये केवल एकान्त चाहिए। करोड़ों रुपये की पूंजी जो दुनियां अत्र तक मन्दिरों और उनमें मूर्तियों के निर्माण पर खर्च करती आई हैं वह सब बर्बाद होती और भविष्य में बचती रहती यदि साकार पूजा का प्रचलन न होता।

[१६]

अब प्रायः यह निर्विवाद है कि विचौलियों और सगुण पूजा ही के कारण संसार में सम्प्रदाय बने और साम्प्रदायिकता का निर्माण हुआ, उनमें परस्पर शत्रुता बन चली जो कि कालान्तर में भीषण रक्तपात का कारण बनी। यों सब धर्मों और सम्प्रदायों में जो कुछ महत्तम समापवर्तक (Highest Common Factor H. C. F.) है—वह मात्र एक सर्व व्यापक निराकार ईश्वर ही है। अनेकान्त विचारधारा जो कि यह कहती है कि सब मार्ग और सब धार्मिक दर्शन और उनके कर्म-कान्ड ठीक हैं—वह तो सब वादों का लघुत्तम समापवर्तक अर्थात् (Largest Common Multiple—L. C. M.) है। सबको सब कुछ मानने की स्वतन्त्रता देते हुये उसमें एकत्व अर्थात् Unity की खोज करना यह तो वस्तु स्थिति के विपरीत परिस्थिति है। ऐसे प्रयत्न से विश्व में एकरूपता कभी नहीं आवेगी और विभिन्न संस्कृतियां फूलती फलती हुई सदैव परस्पर विलगाव और शत्रुता का निर्माण करेंगी। विश्व संस्कृति का निर्माण नहीं होगा। सब धर्मों में समान भावेन व्याप्त केवल एक ही तथ्य है—और वह है निराकार निर्गुण ईश्वर। बस उसी पर सबको केन्द्रित होकर एक विश्व संस्कृति का निर्माण सम्भव है। निराकार की स्तुति के प्रचलन में ही भारत का तथा विश्व का कल्याण अभिप्रेत है।

दिल्ली दरबार के समय महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सब धर्माचार्यों का सम्मेलन करके यही प्रस्ताव रक्खा था। “सत्यार्थ प्रकाश” ग्रन्थ की रचना का भी यही उद्देश्य उन्होंने उसकी भूमिका में लिखा है। यही उनका जीवनोद्देश्य था। उनके दर्शाये मार्ग के पथिक हम यावज्जीवन उसकी प्राप्ति में कार्यरत बने रहेंगे। और उन महामत्ता का ही एतद्विषयक उद्धरण उन्हीं की भाषा में यहां पुनः मुद्रित करके इस प्रसून को समाप्त करते हैं।

हिरण्य गर्भः सम्वर्त्तताग्रेभूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।

सदाधार पृथिवी द्यामुतेमां कस्मै देवाय दविषा विधेम ॥

यजुर्वेद—१३-४ ।

इस पर महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती का व्याख्यान ।

(आर्याभिविनय—अध्याय-२ स्तुति विषय—मंत्र सं-२०)

[जब सृष्टि नहीं हुई थी तब एक अद्वितीय हिरण्य गर्भ (जो सूर्यादि तेजस्वी पदार्थों का गर्भनाम उत्पत्ति-स्थान-उत्पादक है) सो ही प्रथम था। वह सत्र जगत का सनातन प्रादुर्भूत प्रसिद्ध पति है। वही परमात्मा पृथिवी से लेके प्रकृति पर्यन्त जगत को रच के धारण करता है। कस्मै प्रजापति जो परमात्मा है, उसकी पूजा आत्मादि पदार्थों के समर्पण से यथावत करें, उससे मित्र की उपासना लेशमात्र भी हम लोभ न करें। जो परमात्मा को छोड़ के वा उसके स्थान में दूसरे की पूजा करता है, उसकी और उस देश भर की दुर्दशा अत्यन्त होती है, यह बात प्रसिद्ध है, इससे चेते। मनुष्यों जो तुमको सुख की इच्छा हो तो एक निराकार की ही यथावत भक्ति करो।

उपसंहार

हम श्राप और वरदान की पद्धति में विश्वास नहीं करते हैं। पर रामचरित मानस के उत्तर काण्ड में काग भुसुण्ड अपने कलयुग में अवधपुरी

में जन्म लेने और लोमस ऋषि के आश्रम में जाकर उनसे निराकार और साकार स्तुति पर शास्त्रार्थ करने की कथा गुरुण से यों कहता है:—

[१]

ब्रह्म ज्ञान रत मुनि विज्ञानी । मोहि परम अधिकारी जानी ।
 लागे करन ब्रह्म उपदेसा । अज-अद्वैत अगुन हृदयेसा ।
 अकल अनाम अनीह अरूपा । अनुभव गम्य अखंड अनूपा ।
 मन गोतीत अमल अविनासी । निर्विकार निरवधि सुखरासी ।
 सो तै ताहि लोहि नहि भेदा । बारि बीचि इव गावहि वेदा ॥
 [दो० ११०, चौ० २-६]

परन्तु काग महाशय की समझ में नहीं आया ।
 विविधि भांति मोहि मुनि समझावा । निरगुन मत मम हृदय न आवा ।
 तब मैं निगुन मत कर दूरी । सगुन निरूपण करि हठ भूरी ।
 १३-१४

उत्तर प्रति उत्तर मैं कीन्हा । मुनि तन भये क्रोध के चीन्हा ।
 पुनि पुनि सगुन पच्छ मैं रोपा । तब मुनि बोलेउ वचन सकोपा ।
 [१११-१२]

लोमस ऋषि ने तब श्राप दिया.—
 मूढ़ परम सिख देउ न मानसि । उत्तर प्रति उत्तर बहु आनसि ।
 सत्य वचन विश्वास न करहीं । वायस इव सब ही ते डरहीं ।
 सठ स्वपच्छ तब हृदय विसाला । अवसि होहि पच्छी चंडाला ।
 [११११३-१५]

उस श्राप को—

लोह श्राप मैं सीस चढ़ाई । नहि कछु भय न दीनता आई ।

[४२]

तुरत भयऊ मैं काग तव पुनि मुनि पद सिरु नाइ ।
सुमिरि राम रघुवंस मनि हरपित चलेउं उड़ाइ ॥

[११२]

सो आपके सामने विकल्प है कि आदमी होना चाहते हैं कि कौआ ?

इत्यलम्

अपील

स्व० पं० लेखराम ने कहा था कि आर्य साहित्य का स्रजन सतत होते रहना चाहिये । आप इस लघु-पुस्तिका को बिना मेरी अनुमति के वितरणार्थ छपवा सकते हैं ।

जो प्रसून छपकर समाप्त हो गये हैं तथा जो नये पुस्तक भी प्रकाशित होने शेष हैं, उनमें आप आर्थिक सहयोग देकर पुन्य के भागी बनें । हमारा साहित्य पचास प्रतिशत निःशुल्क वितरित कर दिया जाता है । शेष लागत मूल्य पर विक्री हेतु सुरक्षित रहता है ।

लेखक द्वारा लिखित सारा अन्य साहित्य इन्हीं पतों पर उपलब्ध है । इसी पते पर आर्थिक सहायता भेजी जा सकती है । धन्यवाद ।

(१) बाबूराम गुप्त (मंत्रीजी), पो०-अलीगंज, जिला-एटा (यू० पी०)

(२) यतीन्द्र कुमार गुप्त, २-निर्मलाश्रम, निर्मल छावनी, हरिद्वार ।

(३) रमेश कुमारी गुप्त, २२३ खिरनी वाला मैदान, भोपाल-१२



सेवा में श्रीमान—

ग्राम या मुहल्ला—

जिला—

पोस्ट—

प्रान्त—

दो प्रतिष्ठानों की स्थापना के सम्बन्ध

१. व्रतवादीय आर्यपीठ (Chair)—व्रत दर्शन है। आर्य-संगठना का महानोद्देश्य उस दर्शन एवं प्रसार ही है। सम्प्रति आर्यों ने दर्शन-निर्पेक्ष अपने ऊपर एक शताब्दी तक ढोया है। अब मात्र अपने चिन्तन-लेखनादि का योग देना चाहें उनके लिये यह पीठ सात्साह स्थापित किया गया है। चाहे जिस देश, आयु या आश्रम के हों, इस पथ के पथी हो सकते हैं। विधान-निर्माण हेतु सुझाव तथा सदस्य बनने हेतु स्वीकृति पत्र निम्न पते पर आमंत्रित हैं।

—पीठ कार्यवाह

२. सत्यान्वेषिणी सभा भोपाल—कलकत्ता निवास काल में इस सभा का निर्माण करके उसका विधान पंजीकृत (Registered) कराया था। तब से धर्मतल्ला के विशाल मैदान में कीर्ति-स्तम्भ के पास सैकड़ों विभिन्न धर्मी सुधी जन प्रति रविवार को संध्या समय पांच बजे एकत्रित होकर आकाशीय-वितान के ही नीचे बैठकर विभिन्न धार्मिक, सामाजिक और दार्शनिक विषयों पर विचार-परिवर्तन और वाद-विवाद करते हैं। दयानन्द ने कहा था “सत्य को ग्रहण करने और असत्य को त्यागने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।” यह शाश्वत उद्देश्य आदि में वेद ने घोषित किया था।

हिरण्यमयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।

तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्य धर्माय दृष्टये ॥ यजु० ४०।१५ ॥

[सत्य का मुख अन्य आकर्षक वस्तुओं ने ढंक रखा है। सत्य धर्म का बोध करने के लिये उस ढक्कन को उतार फेंको।] अस्तु उस सभा की शाखा-वत भोपाल में नं० २२३ खिरनी वाला मैदान में बावे सुल्तानी (फाटक) में काठ के पुल पर प्रति रविवार सायं ५ से ६ बजे तक उक्त प्रकार सत्संग प्रारम्भ कर दिया गया है। उपस्थिति प्रार्थनीय है।

—रामेश्वरदयाल